प्रकाशक-
शारदा संस्कृत संस्थान
सी.२७/५९, जगतगंज,
वाराणसी - २२१००२
(०५४२) २२०४१६८

न -
न
गस्त्यकुण्ड,
२१००१
४२) २४५२०३७

प्रकाशकाधीन

र प्रेस
बड़ा गणेश, वाराणसी
9450871930

कथा संक्षेप

प्रस्ताविका

भागीरथी के तटपर पाटलिपुत्र (पटना) नाम का नगर है। वहाँ सुदर्शन नाम का राजा राज्य करता था, उसने एक समय किसी से पढ़े गये इस आशय के दो श्लोक सुनें। (१) 'अनेक संशयों को मिटाने वाला, परोक्ष पदार्थ को दिखाने वाला, सभी का नेत्र 'शास्त्र' जिसके पास नहीं है वह अन्धा है। (२) यौवन, धन, प्रभुता और अविवेक इनमे से कोई एक भी अनर्थ के लिए पर्याप्त है फिर जहाँ चारों हों, वहाँ कहना ही क्या है।' यह सुनकर राजा ने अपने कुमार्गगामी मूर्खपुत्रों को देखकर पण्डितों की सभा की और उनको विद्वान बनाने का प्रश्न पण्डितों के सामने रखा। उनमें से विष्णुशर्मा नाम के एक पण्डित ने कहा मैं आपके इन पुत्रों को छः मास में विद्वान और नीतिज्ञ बना दूँगा। राजा ने यह बात सुनकर अपने पुत्रों को उनके अधीन कर दिया।

विष्णुशर्मा ने राजप्रसाद को ही गुरुकुल बना दिया और वहीं राजपुत्रों को एकत्र करके नीति की शिक्षा देनी प्रारम्भ की। उन्होनें इस प्रकार से कथा प्रारम्भ की।

मूलकथा

गोदावरी नदी के तट पर एक बहुत बड़ा सेमल का वृक्ष है, वहाँ पर अनेक स्थानों से आकर रात में पक्षीगण निवास करते हैं। एक दिन भगवान चन्द्र के अस्त होने पर लघुपतनक नाम के कौवे ने एक व्याध को आते हुए देखा। और सोचने लगा—यह अशुभ दर्शन आज क्या अनिष्ट दिखायेगा?" ऐसा सोचकर वह व्याध के पीछे–पीछे घबड़ाया हुआ चला। व्याघ ने चावल के कणों को फैलाकर जाल बिछा दिया और वहीं छिपकर बैठ गया। उसी समय राजा चित्रग्रीव ने उन कणों को देखा और लोभी कबूतरों से कहा—' इस जंगल में चावलों के ये कण कहाँ से आ सकते हैं। इसलिये मेरे मन में अनिष्ट की शंका उत्पन्न हो रही है अतः कहीं वैसे ही हमलोग न फँस जायँ जैसे – 'सोने के कंगन के लोभ से वृद्ध पथिक गहरे कीचड़ में फँसकर मर गया था।' कबूतरों के पूछने पर चित्रग्रीव ने कथा प्रारम्भ की।

बाघ और लालची पथिक की कथा

तालाब के किनारे एक बूढ़ा बाघ स्नान करके हाथ में कुश लिये और सोने का कंकण हाथ में लिए हुये जोर–जोर से कह रहा था एक दिन ... देखो सोने के कं...

का कोई दान ले लें।' एक लालची पथिक ने बाघ से कहा 'मैं दान लेने को तैयार हूँ किन्तु तुम्हारा विश्वास कैसे करूँ। बाघ कहने लगा कि — 'जवानी में मैं पापकर्मी था किन्तु अब मेरा शरीर शिथिल हो गया है सच्चाई के साथ दान देकर पहले किये अपने कर्म का प्रायश्चित करना चाहता हूँ। अतः तुम तालाब में स्नान करके मेरा दान ग्रहण करो।' पथिक लालच में पड़कर ज्यों ही तालाब में प्रवेश करता है त्यों ही वह कीचड़ में फँसता हैं और उसे ज्ञात होता है कि 'हिंसक के विश्वास करने का फल मुझे मिला।' पथिक यह सोच ही रथा कि बाघ उसको मारकर खा गया।

इस प्रकार कबूतरों के राजा ने उनको मना किया पर लोभवश कबूतरों ने राजा की एक न सुनी और जाल पर उतर पड़े और फँस गये। इसके बाद चित्रग्रीव ने उन सबको एक ही साथ जाल को लिए दिये अपने मित्र हिरण्यक के यहाँ चलने की राय दी। और जाल सहित वहाँ पहुचकर हिरण्यक नाम के चूहे से भेंट की। वह चित्रग्रीव का परम मित्र था। उस चूहे हिरण्यक ने अपने मित्रको जाल में फंसा देखकर पूछा—" मित्र! ऐसी दशा कैसे?" उसने उत्तर दिया कि — 'यह बन्धन हमारे पूर्वकृत पापों का परिणाम है।' इसके बाद हिरण्यक चित्रग्रीव का जाल काटने के लिए तत्पर हुआ परन्तु चित्रग्रीव के विशेष आग्रह पर पहले अन्य कबूतरों का बन्धन काटकर बाद में उसने चित्रग्रीव का बन्धन काटा।

इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी लघुपतनक नाम का कौवा हिरण्यक के पास मैत्री करने के लिए गया। उन दोनों के वार्ता प्रसंग में हिरण्यक से निम्न कथा कही-

मृग और सियार की कथा

मगध में चम्पकवती नाम का एक बड़ा जंगल था। उसमें परस्पर मित्र मृग और कौवा रहते थे। मृग के माँस को खाने की इच्छा से एक चतुर सियार ने मृग से मित्रता की। कौवे ने सियार को देखकर मृग से कहा —' यह सियार कौन है, अज्ञात कुल—शील वाले अविश्वसनीय होते हैं। ऐसों को रहने का स्थान नहीं देना चाहिये क्योंकि मार्जार के दोष से जरद्गव गीध बेचारा मारा गया। जरद्गव की मृत्यु का कारण पूछने पर सुबुद्धि नाम के कौवे ने जरद्गव गीध और दीर्घकर्ण बिलाव की कथा कही। जो इस प्रकार है—

जरद्गव गीध और दीर्घकर्ण बिलाव की कथा

गंगा के किनारे गृध्रकूट पहाड पर एक पेड़ था। उसके कोटर में एक बुढ्ढा जरद्गव नामक [illegible] रहता था। पेड़ के पक्षी अपने-अपने भोजन के कुछ अंश उस गीध को देते [illegible]र वह उनके बच्चों की देखभाल करता था। एक दिन एक विलाव को आते हु[illegible]र पक्षियों के बच्चे चिल्लाने लगे, चिल्लाना सुनकर

गीध ने कहा– 'कौन है।' बिलाव नें कहा कि –'मैं दीर्घकर्ण नामक बिलाव हूँ।' आपके धर्मज्ञान की प्रशंसा सुनकर उसे प्राप्त करने के लिए आया हूँ, गीध ने अज्ञात कुलशील वाले उस बिलाव को रखना स्वीकार नहीं किया। पर वह चतुर बिलाव किसी प्रकार गीध को विश्वास दिलाकर उसी के कोटर में रहने लगा और पक्षियों के बच्चों को खाने लगा। पक्षियों ने सन्देह होने पर जब खाने वाले की खोज शुरू की तब वह बिलाव भाग गया। बच्चों की हड्डियाँ उस गीध के कोटर में देखकर उन्होनें यह समझा कि गीध ने ही उनके बच्चों को खाया है। पक्षियों ने मिलकर उस बूढ़े गीध को मार डाला।

सुबुद्धि कौवे के कहने पर भी मृग ने उसकी बात न मानी और सियार को अपना साथी बनाया। तदन्तर एक दिन सियार द्वारा कहे जाने पर कि प्रतिदिन तुम इस निकट के ही खेत में आकर चरना, मृग उस फसल के हरे भरे खेत को चरा करता था। इसी सिलसिले में एक दिन वह खेत में बिछाये गये जाल में फँस गया, जिसे खेत के मालिक ने बिछाया था। मृग को जाल में फँसा देखकर सियार बहुत खुश हुआ क्योंकि वह मृग के माँस की आशा लगाये बैठा था। वह मृग को मुक्त न कर वहीं छिपकर बैठ गया। तक तक मृग का मित्र सुबुद्धि कौआ आ गया। कौए की युक्ति के अनुसार मृग ने जब मालिक को आते देखा तब झट अपनी साँस रोक पेट फुलाकर निश्चल हो गया ओर उसके मृतवत् शरीर पर बैठ कर कौआ मृग की आँखों को खोदने लगा, मालिक ने यह समझा कि मृग मर गया, अतः जल्दी ही जाल को अलग कर दिया। मौका पाते ही मृग भाग खड़ा हुआ। यह कौऐ की ही चाल की थी। मालिक ने यह देखा और पलटकर डंडा चलाया जो सियार को लगा वह बुरी तरह मर गया। इस प्रकार कौए ने हिरण की जान बचाई। यदि सुबुद्धि काक न होता तो वह मारा ही जाता। इसलिए 'खाद्य–खादक की मैत्री असम्भव हैं।' यह कहने पर भी लघुपतनक ने जबरदस्ती स्वयं को सज्जन बतलाते हुये मित्रता कर ली और साथ में रहने लगे। किसी समय अकाल पडने पर दोनों हिरण्यक के मित्र कच्छप के पास गये वहाँ उसके पूछने पर हिरण्यक ने निम्न कथा सुनायी।

मूषक परिव्राजक कथा

(चूडाकर्ण तथा वीणाकर्ण सन्यासी की कथा)

चम्पक नगरी में वीणाकर्ण नाम का सन्यासी रहता था। वह भिक्षाटन से प्राप्त अन्न को खूँटी में टाँगकर जब सो जाता था तो हिरण्यक नामक चूहों का राजा उसे प्रतिदिन खाया करता था। एक दिन जब उसका मित्र चूडाकर्ण बैठा बातचीत कर रहा था उस समय वीणाकर्ण एक बांस के टुकडे को पीटकर

चूहों को डरा रहा था। इस पर उसके मित्रं ने कहा – 'यह तुम क्या कर रहे हो।' उसने कहा 'कि यह चूहा प्रतिदिन मेरी भिक्षा कूद कूद कर खा जाता है, उसी को डरा रहा हूँ।' इस पर मित्र ने कहा कि इस चूहे ने काफी अन्न संग्रह कर लिया है इसी से यह इतनी ऊँचाई तक उछलता है। उन दोनों मित्रों ने उस चूहे के बिल को खोदकर जितना अन्न उसने संग्रहीत किया था निकाल लिया। इसके कुछ ही दिन बाद वही चूहा दुर्वल होकर बड़ी मन्द गति से चलता हुआ दिखाई देने लगा।

उसकी व्यंग्यात्मक बातों को न सहकर मैं विरक्त होकर लघुपतनक के पास गया। 'क्योकिं भूतदया तथा गृहस्थ धर्म के लिए गृहिणी को चतुर होना इत्यादि गुण आवश्यक है।' मन्थर के पूछने पर कि गृहस्थ के लिए गृहिणी को गुणी होना क्यों जरूरी है। इस पर उसने निम्न कथा कही।

वणिक्पुत्र शक्तिकुमार और गुणवती भार्या की कथा

द्रविड़ देश की कांची नाम की नगरी के धनी वाणिक्पुत्र शक्तिकुमार ने एक गुणवती कन्या से विवाह करने के लिये उसकी परीक्षा के निमित्त एक सेर चावल देकर उसी से पूरी रसोई बनाकर भोजन करने की अपनी इच्छा प्रकट की। उस कन्या ने उसे स्वीकार कर उसी चावल से जायकेदार पूरी रसोई बनाई। वणिक्पुर शक्तिकुमार अत्यन्त प्रसन्न हुआ और गृहकार्य में अतिदक्ष उस कन्या को परम गुणवती समझकर उसके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। कन्या भी विवाह होने के बाद पति के यहाँ आकर देवता की तरह पति की सेवा करने लगी। घर के सभी काम–काज प्रतिदिन करते हुये अपने दास–दासी, सास–ससुर, देवर–देवरानी, जेठ–जेठानी, नन्द–नन्दोई, आदि सबको अत्यन्त प्रसन्न किया। उसके गुण से वशीभूत होकर वणिक्पुत्र शवितकुमार ने अपना सारा परिवार और अपनी सारी सम्पत्ति उसी के अधीन कर दी।

इसलिये मैं कहता हूँ कि–स्त्रियों के गुण पति के प्रिय और हितकर हुआ करते हैं। कछुआ भी इस कथा का समर्थन करता हुआ बोला–'मित्र मैंने भी सुना है कि –जिस घर में पति और पत्नी के विचार एक हों, दूध और पानी की तरह दोनों का मन एकरूप हो गया हो तो वह घर ही स्वर्ग है। स्वर्ग प्राप्ति के लिए पृथक् प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है और जिस घर में पति–पत्नी परस्पर विरुद्ध विचार वाले हो तो वह घर ही नरक है।

इस प्रकार कथा कहते हुये परस्पर आदान–प्रदान करते हुये तीनों सुखपूर्वक रहने लगे। इसी बीच एक मृग व्याध से त्रस्त होकर वहाँ पहुँचा। उसे शरणागत समझकर उसके साथ इन तीनों ने मैत्री कर ली। इस प्रकार वे चारों

मित्र बन गये। मृग को व्याध से डरा हुआ जानकर मन्थरक जंगल को छोड़कर अन्यत्र जाना चाहता था। उसी पर हिरण्यक ने कहा कि– 'उपाय से जो कार्य हो सकता है वह काम पराक्रम से नहीं।' इसी पर हिरण्यक ने निम्न कथा कही।

कर्पूरतिलक हाथी तथा सियार की कथा

ब्रह्मारण्य नामक स्थान में कर्पूरतिलक नाम का हाथी रहता था। उसे देख कर सियारों के मन में आया कि यदि यह मर जाये तो हमलोगों के कई मास तक के भोजन की चिन्ता दूर हो जायेगी। इस पर एक सियार ने कहा कि 'मैं इसे अपनी बुद्धि से मारूँगा।' ऐसा कहकर वह उसके पास जाकर साष्टांग प्रणाम कर उससे बोला – 'महाराज! जंगल में पशुओं ने आपको अपना राजा चुना है, राज्याभिषेक का मुहूर्त बीत रहा है आप जल्दी चलें।' राज्य के लोभ से वह हाथी सियार के पीछे–पीछे चल पड़ा। कुछ दूर जाने पर वह दल–दल में फंस गया और सियार से अपने उद्धार का उपाय पूछने लगा। सियार ने कहा – 'मुझ नीच का तुमने विश्वास किया है उसका फल भोगो।' इसलिये नीतिज्ञों ने कहा है –'जो कार्य बुद्धि से हो सकता है वह पराक्रम से नहीं।'

उपसंहार

'हिरण्यक की हित कीं बात का अपमान कर भय से किंकर्तव्यविमूढ होकर मन्थरक उस सरोवर को छोड़कर चला गया। हिरण्यक आदि भी अनिष्ठ की आशंका से उसके पीछे लगे रहे। कोई व्याघ उसे पकड़कर धनुष में बाँधकर अपने घर की ओर जाने लगा। मृग, कौवा और चूहा सभी उसके पीछे चल पड़े। तब हिरण्यक ने चित्रांग और लधुपतनक से कहा–'जब तक यह व्याध जंगल से नहीं निकलता तब तक मन्थरक को छुड़ाने का प्रयत्न करें। उन लोगों ने कहा–'क्या करें। हिरण्यक ने कहा–' अरे चित्रांग! तुम इस मार्ग के एक पानी वाले गड्ढे के पास पेट फुलाकर तथा पैरों को फैलाकर लेट जाओ और लघुपतनक तुम्हारे शरीर पर चोंच से खोदता रहे, जिससे वह व्याध तुम्हे मरा हुआ जानकर मन्थर को गड्ढे के किनारे रखकर तुम्हें लेने के लिए जायेगा इसी बीच में मैं मन्थर के फन्दे को काट दूंगा और वह शीघ्र पानी में घुस जायगा। और तुम भी व्याघ को पास में आते देख झट उठकर भाग जाना। उन लोगों ने ऐसा ही किया जिससे वे सभी मित्र आपत्ति से मुक्त होकर सूखपूर्वक रहने लगे और वह व्याध शोक करता हुआ सोचने लगा– 'जो निश्चित छोड़कर अनिश्चित के लिए दौड़ता है उसकी दशा मेरे ही जैसी होती है।'

❊❊❊

***

श्रीः

नीतिसंग्रहस्य मित्रलाभः

प्रणम्य नीतिशास्त्रज्ञान्नूतनोऽयं विरच्यते।
हितोपदेशः संक्षिप्तो नीतिसंग्रहनामतः।।

अन्वयः— नीतिशास्त्रज्ञान् प्रणम्य अयं नूतनः, नीतिसंग्रहनामतः संक्षिप्तः हितोपदेशः विरच्यते।

व्याख्याः— नीतेः=नीतिशास्त्रस्य ज्ञाः= पण्डिताः तान् नीतिशास्त्रज्ञान् =नीतिकोविदान्, प्रणम्य=नमस्कृत्य, अयं नूतनः=नवीनः, नीतिसंग्रहनामतः= नीतिसंग्रहनाम्ना प्रसिद्धः, संक्षिप्तः=ग्रन्थान्तरेभ्योऽप्युपयुक्तस्य स्वल्पीयसो गद्यपद्यांशस्य यत्र कुत्रचन सम्मिश्रणेन अनुपयुक्तस्य च अश्लीलांशस्य परित्यागेन लघूकृतः हितोपदेशः=हितोपदेशानामा ग्रन्थः विरच्यते।

भाषा— नीतिशास्त्र के विद्वान महापण्डित मनु प्रभृति को प्रणाम कर, यह नवीन नीति संग्रह नाम से संक्षिप्त हितोपदेश प्रकाशित किया जा रहा है। जिसमें विशेषकर बालक बालिकाओं के उपुयक्त तथा अश्लील गद्य एवं पद्यांशो को निकालकर कहीं –कहीं परमोपयोगी अन्य ग्रन्थों के कथाभाग का दिग्दर्शन कराते हुये उसे छोटा किया गया है।

प्रस्ताविका

सिद्धिः साध्ये सतामस्तु प्रसादात्तस्य धूर्जटेः।
जाह्नवीफेनलेखेव यन्मूर्ध्नि शशिनः कला ।।१।।

प्रसंगः— ग्रन्थादौ आशीर्वादात्मकं मग्ङलं करोति—

अन्वयः— यन्मूर्ध्नि, शशिनः कला, जाह्नवीफेनलेखा, इव (अस्ति) तस्य धूर्जटेः प्रसादात् सतां साध्ये, सिद्धिः अस्तु।।१।।

व्याख्या— यस्य मूर्धा यन्मूर्द्धा तस्मिन् यन्मूर्ध्नि = यन्मस्तके, शशिनः = चन्द्रस्य कला = षोडशभागरूपा, जह्नोः अपत्यं कन्या जाह्नवी = गंगा, तस्याः फेनस्य लेखा इव = फेनरेखा इव (विराजते = शाभते), तस्य = तथाभूतस्य धूः = भाररूपा जटिः = जटा यस्य तस्य धूर्जटेः = शंकरस्य, 'जटिर्जटेति द्विरूपकोशः प्रसादात् = अनुग्रहात् सतां = सज्जानां, साध्ये = साधयितुं योग्यं

साध्यं तस्मिन् साध्ये = अभीप्सितविषये, सिद्धिः = साफल्यमस्तु ।।१।।

भाषा– जिनके मस्तक पर चन्द्रमा की कला गंगाजी के फेन की रेखा के समान शोभित हो रही है, उन शंकर की कृपा से सज्जनों के कार्यों में सफलता प्राप्त हो ।।१।।

भारतीयार्यमर्यादां देवभाषां च वेदितुम्।
कुमार्यश्च कुमाराश्च पठेयुर्नीतिसंग्रहम् ।।२।।

प्रसंगः– नीतिसंग्रहाध्ययनस्य प्रयोजनं प्रस्तौति–

अन्वयः– कुमार्यः, कुमाराः च भारतीयार्यमर्यादां देवभाषां, च वेदितुं, नीतिसंग्रहं पठेयुः ।।२।।

व्याख्या– कुमार्यः = बालिकाः, कुमाराः = बालकाश्च, अर्तुम् सदाचरितुं योग्या आर्याः, भारते भवा भारतीयाः, भारतीया आर्याः, भारतीयार्याः तेषां मर्यादा ताम् = भारतीयशिष्टाचारन्यायपथस्थितिं, देवानां भाषा देवभाषा तां देवभाषाम् = अमरवाणीम्, वेदितुं = ज्ञातुं, नीतेः = नीतिशास्त्रस्य संग्रहः नीतिसंग्रहस्तं नीतिसंग्रहं = संक्षिप्तं हितापदेशम्, पठेयुः = अभ्यसेयुः ।।२।।

भाषा– बालक और बालिकायें भारत के शिष्टाचार की मर्यादा और देवताओं की भाषा (संस्कृत) को जानने के लिए नीतिसंग्रह को पढ़े।।२।।

अजराऽमरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।।३।।

प्रसंगः– प्राज्ञमानवस्य परमं कर्त्तव्यं निर्दिशति–

अन्वयः– प्राज्ञः अजराऽमरवत् विद्याम् अर्थम्, च, चिन्तयेत् मृत्युना, केशेषु गृहीतः इव, धर्मम् आचरेत् ।।३।।

व्याख्या– प्राज्ञः = पण्डितः, अजरामरवत् = जरामरणरहितवत्, जरामृत्यू मे कदापि नागमिष्यतः इति मत्वेत्यर्थः, विद्यां = गद्यपद्योभयात्मकं संस्कृतवाम्ङ्मयम्, अर्थञ्च–धनञ्च, चिन्तयेत् = उपार्जयेदित्यर्थः, मृत्युना = कालेन, केशेषु गृहीतः इव = आकृष्टकेश इव, धर्मम् = धर्मकर्म आचरेत् = पालयेत् ।।३।।

भाषा– बुद्धिमान मनुष्य अपने को बुढ़ापा और मृत्यु से रहित समझकर विद्या और धन का उपार्जन करे और मृत्यु मानों सिर पर सवार है–ऐसा समझकर धर्म का पालन करता रहे।।३।।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रात्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मम् ततः सुखम्।।४।।

प्रंसगः— विद्यायाः फलं निरूपयति—

अन्वयः— विद्या विनयं ददाति, विनयात् पात्रतां याति, पात्रत्वात् धनम् आप्नोति, धनात् धर्मं (आप्नोति) ततः सुखम् (आप्नोति) ।।४।।

व्याख्या— विद्या विनयं = नम्रतां, ददाति, विनयात् = नम्रस्वभावात् पात्रतां = सर्वकार्यकरणयोग्यतां, याति = प्राप्नोति, पात्रत्वात् = योग्यत्वात् धनम्, धनाद्धर्मं ततः सुखम् आप्नोति, इति रीत्या विद्यैवैका सर्वसुखसाधनमस्तीति भावः ।।४।।

भाषा— विद्या से विनय, विनय से योग्यता, योग्यता से धन, धन से धर्म और धर्म से सुख प्राप्त होता है।।४।।

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।।५।।

प्रसंगः— ग्रन्थस्य मुख्यं प्रयोजनं निर्दिशति—

अन्वयः— यत् नवे, भाजने लग्नः, संस्कारः, अन्यथा न भवेत् तत्, इह बालानां, कथाच्छलेन, नीतिः कथ्यते।।५।।

व्याख्या— यत् = यस्माद्धेतोः, नवे = अपरिपक्वे, भाजने = पात्रेशिशौ च, लग्नः = प्रयुक्तः, संस्कारः = रेखादिरूपो गुणाधानादिरूपविद्यासंस्कारश्च अन्यथा न भवेत् = आमरणं विपरीतो न भवति, तत् = तस्माद्धेतोः, इह = अस्मिन् हितोपदेशे, बालानां, कथाच्छलेन=काककूर्मादीनामुपाख्यानादिकथाव्याजेन, नीतिः =राजनीतिप्रभृतिनीतिशास्त्रं कथ्यते ।।५।।

भाषा— जिस कारण मिट्टी के कच्चे पात्र में किया हुआ रेखा आदि कलात्मक संस्कार उसके पकाये जाने पर कभी मिट नहीं सकता इसी कारण कोमल बुद्धिवाले बालकों को अनेक कथाओं के बहाने से मैं इस हितोपदेश ग्रन्थ द्वारा नीतिशास्त्रका उपदेश करता हूँ।।५।।

मित्रलाभः सुहृद्भेदो विग्रहः सन्धिरेव च।
अश्लीलानुपयुक्तांशपरित्यागेन दर्शितः।।६।।

प्रसंगः— ग्रन्थे वर्णितान् विषयान् प्रतिपादयति —

अन्वयः—मित्रलाभः, सुहृद्भेदः, विग्रहः, सन्धिः एव च अश्लीलानुप—युक्तांशपरित्यागेन दर्शितः।।६।।

व्याख्या– मित्रलाभः, सुहृद्भेदः, विग्रहः सन्धिः च इति प्रकरणचतुष्टयम् 'अश्लीलश्च अनुपयुक्तशच अश्लीलानुपयुक्तौ तौ अंशौ अश्लीलानुपयक्तांशौ तौ अश्लीलानुपयुक्तभागौ तयोः परित्यागेन = परिहारेण (मया इह) दर्शितः।।६।।

भाषा– मैंने अश्लील और अनुपयुक्त अंशो को निकाल कर तथा कहीं–कहीं अन्य ग्रन्थों को लेकर मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि इन चारों प्रकरणों को यहाँ दिखाया है।।६।।

अस्ति भागीरथीतीरे पाटलीपुत्रनामधेयं नगरम्। तन्त्र सर्वस्वामिगुणैर्युक्तः सुर्दशनो नाम नरपतिरासीत्। स भूपतिरेकदा केनापि पठ्यमानं श्लोकद्धयं शुश्राव–

भाषा– गंगा के तटपर पाटलीपुत्र (पटना) नामक नगर है वहाँ राजा के सभी गुणों से सम्पन्न सुदर्शन नामक एक राजा था, उस राजा ने एक समय किसी के द्वारा पढे गये ये दो श्लोक सुनें –

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।।७।।

प्रसंगः– शास्त्रज्ञानविरहितं पुरुषं निन्दति–

अन्वयः– अनेकसंशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य, दर्शकम् शास्त्रं सर्वस्य, लोचनं, "यत्" (वर्तते) "तत्" यस्य, नास्ति सः अन्धः एव (भवति)

व्याख्या– अनेकान् संशयान् उच्छिनत्तीति अनेकसंशयोच्छेदि= अनेकविधसंशयनिरासकं, परोक्षार्थस्य = इन्द्रियैर्ग्रहीतुमशक्यस्य अप्रत्यक्षविषयस्य, दर्शकं = प्रत्यक्षमिव यथार्थावबोधकम्, शास्त्रं = पथप्रदर्शकशास्त्रात्मकं चक्षुः, सर्वस्य = समस्तजनस्य, लोचनं = दिव्यनेत्रं, वर्तते तत् = तथाविधम् इन्द्रियातीतभूतभविष्यत्पदार्थदर्शकं शास्त्ररूपं नेत्रं, यस्य नास्ति, सः अन्ध एव भवति।।७।।

भाषा– अनेक संशयों को मिटाने वाला, भूत एवं भविष्य को तथा अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष के समान दिखानेवाला, शास्त्ररूपी दिव्यचक्षु जिसके पास नहीं है, वह वास्तव में अन्धा है।।७।।

यौवनं धनसम्पतिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।।८।।

प्रसंगः– अनर्थकारणानि उपदिशति–

अन्वयः – यौवनं, धनसम्पत्तिः प्रभुत्वम्, अविवेकिता (एतन्मध्ये) एकैकम् अपि अनर्थाय (भवति) यत्र चतुष्टयं तत्र किमु।।८।।

व्याख्या— यौवनं = युवावस्था, धनसम्पत्तिः = द्रव्यवैभवम्, प्रभुत्वं = स्वामित्वं, अविवेकता = विचारशून्यत्वम्, एतेषां, मध्ये एकैकम्, अपि = पृथक्–पृथक् स्थितम्, एकम् एकमपि, अनर्थाय भवति= अनर्थमेव जनयति, यत्र = पुरुषे पुनश्चतुष्टयं एकत्रितं भवति तत्र किमु? = किं वक्तव्यम्। तथाविधः पुरूषस्तु अनर्थानामाकर एव भवतीति भावः।।८।।

भाषा — जवानी, द्रव्यवैभव, स्वामित्व और विचारशून्यता, इन चारों में स्वतन्त्र एक–एक भी अनर्थ का कारण हो जाता है, जहां चारों एक साथ हो वहां की बात ही क्या है? अर्थात वहाँ तो अनर्थ होगा ही।।८।।

इत्याकर्ण्यात्मनः पुत्रान् शास्त्रविमुखान् नित्यमुन्मार्गगामिनो विलोक्य समुद्विग्नमनाः स राजा चिन्तयामास—

भाषा— इन श्लोकों को सुनकर नित्य कुमार्ग पर जाते हुये शास्त्रोचित मर्यादा से विमुख अपने पुत्रों को देखकर घबड़ाया हुआ राजा चिन्ता करने लगा—

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः।
कथञ्चित्स्वोदरभराः किन्न शूकरशावकाः।।६।।

प्रसंग :— विद्याधर्मविवर्जितं पुत्रं निन्दति —

अन्वयः — यः न विद्वान् (भवति) न धार्मिकः (भवति) जातेन (तेन) पुत्रेण कः अर्थः (भवति) किं शूकरशावकाः कथञ्चित् स्वोदरभराः न भवन्ति?

व्याख्या — यः = पुत्र, विद्वाने = पण्डितः, न = न भवति, न = नापि, धार्मिकः = धर्मनिरतः, भवति जातेन = उत्पन्नेन (तेन = तथाविधेन), पुत्रेण=तनयेन, कः, अर्थः = किं प्रयोजनम्? किं शूकराणां शावकाः शूकरशावकाः = शूकरशिशवः कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण, स्वस्य उदरस्य, भरन्तीति भराः स्वोदरभराः = निजजठरपूरणसमर्था न भवन्ति? अर्थाद्भरन्त्येव।।६।।

भाषा— उस पुत्र से क्या लाभ? जो न विद्वान् हो न धार्मिक? क्या सूअर के बच्चे किसी तरह अपना पेट नहीं भरते? अर्थात् भरते ही हैं।।६।।

अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः।
सकृद् दुःखकरावाद्यावन्तिमस्तु पदे पदे।।१०।।

प्रसंगः— मूर्खपुत्रस्य सर्वनिकृष्टतां निर्धारयति -

अन्वयः— अजातमृतमूर्खाणाम् आद्यौ वरम्, अन्तिमः न च (वरम्) आद्यौ सकृद्दुख करौ, अन्तिमस्तु पदे–पदे (दुःखदो भवतीति न स वरमिति

शेषः) ।।१०।।

व्याख्या– न जातः अजातः, स च मृतश्च मूर्खश्च अजातमृतमूर्खाः, तेषामजातमृतमूर्खाणां, मध्ये आद्यौ–प्रथमौ द्वौ (अजातःमृतश्च) वरं=श्रेष्ठौ, अन्तिमश्च न श्रेष्ठ इत्यर्थः यतः आद्यौ=द्वौ सकृददुःखकरौ=एकवारमेव दुःखजनकौ किन्तु, अन्तिमः=मूर्खः पदे–पदे=प्रतिपदं, दुःखकरो भवतीति भावः ।।२०।।

भाषा – उत्पन्न ही न हुआ अथवा उत्पन्न होकर उसी समय मर गया और मूर्ख इन तीनों में से उत्पन्न ही न होना और होकर मर जाना ये दोनों प्रकार के पुत्र अच्छे हैं, तीसरा (मूर्ख) तो अच्छा नहीं, क्योंकि पहले कहे हुये दोनों केवल एक बार दुःख देते हैं, मूर्ख तो पदे–पदे हर समय दुःख देता रहता है ।।१०।।

किंच

देशवंशजनैकोऽपि कायवाक्चेतसां चयैः ।
येन नोपकृतः पुंसा तस्य जन्म निरर्थकम् ।।११।।

प्रसंगः– जन्मनः निरर्थकताकारणानि कथयति –

अन्वयः– येन पुंसा कायवाक्चेतसां चयैः देववंशजनैकः अपि 'यदि' न उपकृतः 'तदा' तस्य जन्म निरर्थकम् ।।१।।

व्याख्या– येन=केनचन, पुंसा=पुरुषेण, कायश्च वाक्च चेतश्च कायवाक्चेतांसि तेषां कायवाक्चेतसां=देहवाङ्मनसां, चयैः=निचयैः, समस्तैरसमस्तैर्वा, देशश्च वंशश्च देशवंशौ, देशवंशयोः जनाः देशवंशजनाः, तेभ्यः वंशोद्भवेभ्यश्च मध्याद् एकोऽपि, 'यदि' नोपकृतः=उपकारं न प्रापितः, तदा तस्य तथाविधस्य अनुपकारिणः जनस्य जन्म=उत्पत्तिः, निरर्थकम्=निष्प्रयोजनं भवति ।।११।।

भाषा – जिस किसी पुरुष ने शरीर, वाणी और मन इन तीनों द्वारा अथवा इसमें से किसी एक के द्वारा देश का अथवा अपने वंश का एक भी उपकार यदि न किया तो ऐसे अनुपकारी पुरूष का जन्म लेना ही व्यर्थ है ।।११।।

अन्यच्च–

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं वशः ।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरूच्चार एव सः ।।१२।।

प्रसंगः– दानादिभिः यस्य यशः न प्रथितं तस्य जीवनं कथमिति प्रतिपादयति–

अन्वयः– यस्य यशः दाने, तपसि, शौर्ये, विद्यायाम् अर्थलाभे च न प्रथितं सः मातुः उच्चारः एव ।।१२।।

व्याख्या– यस्य यशः=कीर्तिः दाने, तपसि=तपस्यायां शौर्ये=पौरुषे विद्यायां=विद्योपार्जने अर्थलाभे=धनोपार्जने, च न प्रथितं=न प्रसृतम्, सः पुरुषः मातुः= जनन्याः, उच्चार एव=पुरीष एव भवति।।१२।।

भाषा – जिस पुरुष की कीर्ति दान देने में, तपस्या में, वीरता में, विद्योपार्जन में और धनोपार्जन में नहीं फैली वह पुरुष अपनी माता की केवल विष्ठा के ही समान होता है।।१२।।

अन्यच्च– **पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः क्वाप्यतिदुष्करम्।**
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धो धार्मिकः सुधीः।।१३।।

प्रसंगः– सत्पुत्रप्राप्तिकारणं निर्दिशति –

अन्वयः– येन क्वापि पुण्यतीर्थे अतिदुष्करं तपः कृतम् तस्य पुत्रः वश्यः समृद्धः, धार्मिकः सुधीः (च) भवेत्।।१३।।

व्याख्या– येन क्वापि पुण्यतीर्थे = कस्मिन्नपि पुण्यक्षेत्रे, अतिदुष्करं = अतिकठिनं तपः कृतम्, तस्य=पुरुषस्य पुत्रः, वश्यः=आज्ञापालकः, समृद्धः = धनपुत्रादिवैभवसम्पन्नः, धार्मिकः=धर्मात्मा, सुधीः=सुबुद्धियुक्तः भवतीति शेषः।

भाषा– जिस पुरुष ने किसी पुण्यतीर्थ में जाकर अतिकठिन तपस्या की हो तो उसके प्रभाव से उसका पुत्र आज्ञाकारी, धनधान्यादियुक्त, धर्मात्मा एवं विद्वान् होता है।।१३।।

अपि च– **अर्थागामो नित्यमरोगिता च, प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।**
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या, षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।१४।।

प्रसंगः– जीवलोकस्य षट्सुखानि प्रतिपादयति –

अन्वयः – हे राजन्! नित्यम् अर्थागमः, अरोगिता च, प्रिया प्रियवादिनी च भार्या, वश्यः पुत्रश्च, अर्थकारी विद्या च, (एतानि) जीवलोकस्य, षट्सुखानि।

व्याख्या– हे राजन्! नित्यं = निरन्तरं, अर्थस्य=धनस्य आगमः = प्राप्तिः, आरोगिता=निरोगिता च, भार्या=पत्नी प्रिया=प्रियकारिणी, प्रियं वदतीति प्रियवादिनी=मधुरभाषिणी च, वश्यः =आज्ञाकारी पुत्रः, एवम् अर्थं करोतीति अर्थकारी= धर्मार्थकाममोक्षरूपपुरुषार्थचतुष्टयप्रदा विद्या च, एतानि षट् तु जीवलोकस्य=संसारिणो जनस्य, सुखानि सन्तीति शेषः।।१४।।

भाषा – और – हे राजन्। नित्य धनागम, स्वस्थता, प्रेम करनेवाली सत्य बोलने वाली स्त्री, आज्ञापालक पुत्र तथा धनोपार्जन करने वाली विद्या ये मनुष्य लोक के छः सुख है।।१४।।

तथाच— यस्य कस्य प्रसूतोऽपि गुणवान्पूज्यते नरः।
धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति।।१५।।

प्रसंगः— गुणवतो नरस्यैव पूज्यतां निर्धारयति —

अन्वयः— यस्य कस्य प्रसूतः अपि गुणवान् नरः (लोके) पूज्यते, वंशविशुद्धः अपि धनुः (यदि) निगुर्णः, (तदा सः) किं करिष्यति।।१५।।

व्याख्या— यस्य कस्य = अज्ञातवंशस्य वंशविशुद्धिरहितस्यापीत्यर्थः, प्रसूतः=कुले उत्पन्नः, गुणवान्=गुणशाली नरः, लोके पूज्यते, वंशविशुद्धः= छिद्रादिरहितवंशरचितः, अपि, धनुः=कोदण्डः निर्गुणः= प्रत्यंचारहितश्चेत्तदा सः किं करिष्यति? अत्र 'धनु' शब्दः पुल्लिंग उकारान्तो वर्तते।।१५।।

भाषा— किसी भी वंश में उत्पन्न मनुष्य यदि गुणी है तो समाज में उसका सम्मान होता है जैसे श्रेष्ठ बांस से बने हुये भी गुण (प्रत्यंचा) रहित धनुष से क्या उपयोग लिया जा सकता है? अर्थात कोई नहीं।।१५।।

तत्कथमिदानीमेते मम पुत्रा गुणवन्तः क्रियन्ताम्? यतः—

भाषा— तो मेरे ये पुत्र अब कैसे गुणवान् बनाये जायें? क्योकि—

आहारनिद्राभयसन्ततित्वं सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानं हि तेषामधिकं विशिष्टं ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।।१६।।

प्रसंगः— धर्मस्य मानवतासम्पादकत्वं निरूपयति —

अन्वयः— नराणाम् आहारनिद्राभयसन्ततित्वम् एतत् पशुभिः समानम् (भवति) तेषां ज्ञानं हि अधिकं विशिष्टं (भवति) ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः (भवन्ति)।।१६।।

व्याख्या— नराणाम्, आहारश्चनिद्रा च भयं च सन्ततित्वं च तेषां समाहारः आहारनिद्राभयसन्ततित्वं, एतत्=आहारादिचतुष्टयम्, पशुभिः समानम्=पशुतुल्यम् एव, किन्तु तेषां=मनुष्याणां ज्ञानं हि=बोध एव, अधिकं विशिष्टं=पशुभ्यो व्यावर्तकं भवति। अतः ज्ञानेन हीनास्तु नराः पशुभिः, समानाः=तुल्या भवन्ति।।१६।।

भाषा — मनुष्य में और पशुओं में आहार निद्रा, भय और सन्ततित्व ये चारों गुण समान होते हैं किन्तु एक ज्ञान ही ऐसा गुण है जो मनुष्य में विशेष रूप से होता है इसलिये ज्ञान से रहित मनुष्य पशु के समान हुआ करते हैं।।१६।।

यतश्च— धर्मार्थकाममोक्षणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्।।१७।।

प्रसंगः— कस्य जन्मनिरर्थकमिति उत्तरयति —

अन्वयः — यस्य धर्मा काममोक्षाणाम् एकः अपि न विद्यते, अजागलस्तनस्य इव तस्य जन्म निरर्थकं (भवति)।।१७।।

व्याख्या— यस्य=पुरुषस्य, धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च ते=तथोक्ताः तेषां धर्मार्थकाममोक्षाणां=धर्मादिचतुर्णां मध्ये, एकः अपि न विद्यते, अजा=छागी तस्याः गलस्थितस्य स्तनस्य इव, तस्य=उक्तप्रकारकस्य पुरुषस्य जन्म निरर्थकम् भवति।।१७।।

भाषा — धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में जिसमें एक भी नहीं होता उसका जन्म बकरी के गले में लटकनेवाले स्तन के समान निरर्थक होता है।

अत्रोच्यते— आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः।।१८।।

अन्वयः— आयुः, कर्म च वित्तं च, विद्या निधनमेव च, एतानि पंच अपि गर्भस्थस्य एव देहिनः सृज्यन्ते।।१८।।

व्याख्या — आयुः = जीवनकालः, कर्म = पूर्वजन्मकृतसुकृतदुष्कृत जन्यसुख दुःखादि भोगः, वित्तञ्च = धनञ्च, विद्या च, निधनं = मरणञ्च एतानि पंचापि गर्भस्थस्यैव = जननीगर्भस्थितस्यैव देहिनः = प्राणिनः, सृज्यन्ते = निर्धार्यन्ते।।१८।।

भाषा— आयु, कर्म, धन, विद्या मृत्यु ये पांचो प्राणी के गर्भ में रहते हुये ही ब्रह्मा के द्वारा निर्धारित किये जाते हैं।।१८।।

तत्तु केवलप्रारब्धप्रशंसापरवशतया तत्प्राधान्यप्रतिपादनम्। तत्राप्युद्योगप्राबल्ये प्रारब्धपराजयोऽवश्यम्भावी। तथाहि—

भाषा— यह तो केवल प्रारब्ध की प्रशंसा करनेवाले लोगों का उसको बड़प्पन देना मात्र है। इनमें उद्योग के प्रबल हो जाने पर प्रारब्ध की हार निश्चित होती है। कहा भी है कि—

दैवे पुरुषकारे चा स्थितमस्य बलाबलम्।
दैवं पुरुषकारेण दुर्बलं ह्युपहन्यते।।१६।।

प्रसंगः— दैवापेक्षया पुरुषकारस्य प्राधान्यं वर्णयति —

अन्वयः— दैवे पुरुषकारे च अस्य बलाबलं स्थितम्। हि परुषकारेण दुर्बलं दैवम् उपहन्यते।।१६।।

व्याख्या– दैवे = भाग्ये, पुरुषं करोतीति पुरुषकारः तस्मिन् पुरुषकारे=पौरुषे च अस्य बलञ्च अबलञ्च बलाबले तयोः समाहारः बलाबलं = दैवभागधेययोः मध्ये कस्य बलम् अधिकं कस्य वा न्यूनमित्यर्थः, स्थितम् = प्रतिष्ठितम् हि = यतः पुरुषकारेण = पौरुषेण, दुर्बलं = न्यूनबलं दैवम् = भाग्यम् उपहन्यते = हिंसितुं शक्यते।।१६।।

भाषा – भाग्य और पुरुषार्थ में इसका बलाबल विद्यामान है पुरूषकार के द्वारा दुर्बल भाग्य पराजित होता है।।१६।।

अन्यच्च–अत्युत्कटैरिहत्यैस्तु पापपुण्यैः शरीरभृत्।
प्रारब्धं कर्म विच्छिद्य भुङ्क्ते तत्तत्फलं द्रुतम्।।२०।।

प्रसंगः– अत्रकृतानां पापपुण्यानामेव फलदायकत्वमिति ब्रवीति–

अन्वयः– शरीरभृत्, अत्युत्कटैः, इहत्यैः, पापपुण्यैः, प्रारब्धं कर्म विच्छिद्य तत्तत्फलम् भुङ्क्ते।।२०।।

व्याख्या– शरीरं बिभर्तीति शरीरभृत् = देहधारी पुरुषः अति उत्कटानि अत्युकटानि तैः अत्युत्कटैः = अत्युग्रैः इह भवानि इहत्यानि तैः इहत्यैः = इह जन्मानि कृतैः, पापानि च पुण्यानि च पापपुण्यानि तैः पापपुण्यैः = दुष्कृतसुकृतैः प्रारब्धं=समारब्धं कर्म, विच्छिद्य=निर्भिद्य, द्रुतं=शीघ्रम् एव तेषां–तेषां फलानां समाहारः तत्तफलम्=पापपुण्यकर्मजन्यफलम् भुङ्क्ते=अनुभवति।।

भाषा – देहधारी पुरूष इस जीवन में किये गये अत्युग्र पाप और पुण्यों से प्रारब्ध कर्म को काटकर शीघ्र ही पाप और पुण्य के फल को भोगता है।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषाः वदन्ति। दैवं निहत्य कुरु पौरुषामात्मकशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्धययति कोऽत्रदोषः।।२०।।

प्रसंगः– उद्योगिन एव प्रंशसापात्राणि न तु भाग्यवादिनः इति वर्णयति–

अन्वयः– लक्ष्मीः उद्योगिनं पुरुषसिंहम् उपैति, कापुरुषाः दैवेन देयम् इति वदन्ति। दैवं निहत्य आत्मशक्त्या पौरुषं कुरु, यत्ने कृते (अपि) यदि न सिद्धययति (तर्हि) अत्र कः दोषः।।२१।।

व्याख्या– लक्ष्मीः=सम्पत्तिः, उद्योगः पुरुषार्थः अस्य इति उद्योगी तम् उद्योगिनं=पुरुषार्थशीलं, पुरुषः सिंह इव इति तं पुरुषसिंह, पुरुषश्रेष्ठस्तम्, उपैति=प्राप्नोति, कुत्सिताः पुरुषाः कापुरुषाः =पुरुषार्थहीनाः, 'दैवेन देयमिति' वदन्ति (अतः) दैवं=भाग्यं निहत्य=त्यक्त्वा, आत्मशक्त्या=स्वसामर्थ्येन

पौरुषं=पुरुषार्थं कुरु, यत्ने=प्रयत्ने कृतेऽपि यदि न सिद्धययति=कार्यं सिद्धिं न गच्छति, चेत् तर्हि अत्र कः दोषः= का वा त्रुटिः इति अर्थात् कोऽपि दोषो नेति शेषः।।२१।।

भाषा – उद्योग करनेवाले सिंह के समान पुरुष को लक्ष्मी स्वयं वरण करती है। 'भाग्य ही सब कुछ देता है' इस प्रकार के वाक्य पुरुषार्थहीन मनुष्य कहा करते हैं। इसलिये भाग्य की उपेक्षा करके अपनी शक्ति भर उद्योग करते रहना चाहिये यदि उद्योग करने पर भी सफलता न मिले तो फिर इसमें तुम्हारा क्या दोष? अर्थात् कोई नहीं।।२१।।

समाश्वासनवागेका न दैवं परमार्थतः।
मूर्खाणां सम्प्रदायेऽस्य दैवस्य परिपूजनम्।।२२।।

प्रसंगः– मूर्खा एव भाग्यवादिनो भवन्तीति प्रतिपादयति –

अन्वयः– (इयं) एका समाश्वासनवाक् (मात्रं) परमार्थतः, दैवं न (किञ्चित्) मूर्खाणां सम्प्रदाते, अस्य दैवस्य परिपूजनं भवति।।२२।।

व्याख्या – इयं दैवमस्ति इति, एका=एकसंख्याका, समाश्वासनस्य सान्त्वनायाः वाक्=वाणी, मात्रं, परमार्थतः=यथार्थतः, दैवं=भाग्यं न किञ्चित्=किञ्चिदपि न, मूर्खाणा=मूढानां सम्प्रदाये=समाजे, अस्य, दैवस्य=भागस्य, परिपूजनम्=अर्चनं भवति न तु विद्वत्समाजे।।२२।।

भाषा – यह तो केवल आश्वासन देने के लिए कथन मात्र है कि भाग्य ही सब कुछ है, वस्तुतः भाग्य नाम की कोई वस्तु नहीं है। मूर्खों के समाज में ही केवल एक मात्र भाग्य की पूजा होती है।।२२।।

अन्यच्च– **यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।**
तथा पुरुषकारेण,विना दैवं न सिद्ध्यति।।२३।।

प्रसंगः– पुरुषकारस्य भाग्यफलप्रदातृत्वं निरूपयति –

अंन्वयः– यथा हि एकेन चक्रेण रथस्य, गतिः न भवेत् एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति।।२३।।

व्याख्या– यथा हि एकेन चक्रेण=रथांगेन रथस्य, गतिः=गमनं न भवेत्=न भवति तथा पुरुषकारेण=पौरुषेण विना दैवं=भाग्यं, न सिद्ध्यति=न फलति।

भाषा – जिस प्रकार एक पहिये से रथ नहीं चलता, उसी प्रकार विना पुरुषार्थ किये भाग्य नहीं फलता।।२३।।

तथा च— पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात्पुरुषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः।।२४।।

प्रसंगः— कर्मभाग्ययोः ऐक्यं प्रतिपादयति —

अन्वयः— यत् पूर्वजन्मकृतं कर्म (भवति) तत् दैवं (भवति) इति विद्वद्भिः कथ्यते, तस्मात् (जनः) अतन्द्रितः (सन्) पुरुषकारेण यत्नं कुर्यात्।।२४।।

व्याख्या— पूर्वञ्च तज्जन्म पूर्वजन्म तस्मिन् कृतं पूर्वजन्मकृतं = प्राग्जन्मन्यनुष्ठितम् यत् कर्म, तत् = तदेव, दैवं = भाग्यमिति (विद्वद्भिः) कथ्यते, तस्मात् = पुरुषकारेण विना दैवस्य सिद्धेरभावात् जनः अतन्द्रितः = अनलसः सन् पुरुषकारेण = पुरुषार्थमधिष्ठाय, यत्नं = प्रयत्नं कुर्यात्।।२४।।

भाषा — पूर्वजन्म के किये हुये कर्म ही भाग्य कहलाते हैं इसलिये पुरुष को आलस्य रहित होकर उद्योग करना चाहिये।।२४।।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।२५।।

प्रसंगः— उद्यमस्यैव कार्यसाधकत्वं न तु भाग्यस्येति कथयति—

अन्वयः— हि उद्यमेन कार्याणि सिद्ध्यन्ति न(तु) मनोरथैः। हि सुप्तस्य सिंहस्य मुखे मृगाः न प्रविशन्ति।।२५।।

व्याख्या— हि=यस्मात् कारणात्, उद्यमेन=उद्योगेन, एव, कार्याणि = कर्माणि, सिद्ध्यन्ति, मनोरथैः तु न। हि=यथा, सुप्तस्य=निद्रितस्य, सिंहस्य, मुखे, मृगाः न प्रविशन्ति।।२५।।

भाषा—.केवल मनोरथ से कार्य सम्पन्न नहीं होते हैं प्रत्युत् उद्योग से ही सिद्ध होते हैं, जैसे सोये हुए सिंहके मुँह में मृग स्वयं नहीं चले जाते उसको भी अन्वेषण करना ही पड़ता है।।२५।।

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसंभवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।२६।।

प्रसंगः— विद्यैव शोभाधायिका न तु रूपादिकमिति वर्णयति —

अन्वयः— रूपयौवनसम्पन्नाः विशालकुलसंभवाः (अपि) विद्याहीनाः (पुरुषाः) निर्गन्धाः किंशुका इव न शोभन्ते।।२६।।

व्याख्या— रूपं = सौन्दर्यं, यौवनं = तारुण्यं ताभ्यां सम्पन्नाः, विशालं

= श्रेष्ठं यत् कुलं तस्मिन् सम्भवाः = समुत्पन्नाः अपि विद्याहीनाः = विद्यारहिताः, पुरुषाः, निर्गन्धाः = गन्धरहिताः किंशुकाः = पलाशपुष्पाणीव न शोभन्ते।।२६।।

भाषा– सुन्दरता एवं युवावस्था से युक्त तथा अच्छे कुल में जन्म होने पर भी विद्याहीन पुरुष गन्धरहित पलाश के फूल के सामान शोभा नहीं देते।।२६।।

एतच्चिन्तयित्वा स राजा पण्डितसभां कारितवान्। राजोवाचभो भोः पण्डिताः! श्रूयताम्। अस्ति भवत्सु कश्चिदेवम्भूतो विद्वान् यो मम पुत्राणां नित्यमुन्मार्गगामिनां शास्त्रपराङ्मुखानामिदानीं नीतिशास्त्रोपदेशेन द्वितीयां जन्म कारयितुम् समर्थः। यतः–

भाषा – ऐसा विचार कर उस राजा ने विद्वानों की सभा की, राजा बोला–हे माननीय पण्डितवृन्द! सुनिये, आपलोगों में कोई ऐसा विद्वान है, जो कि नित्य बुरे मार्ग पर चलनेवाले, शास्त्रज्ञान से विमुख अत एव मूर्ख मेरे पुत्रों को नीतिशास्त्र का उपदेश देकर इनका विद्या सम्बन्धी दूसरा जन्म कराने में (द्विज बनाने में) समर्थ है। क्योंकि–

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा।।२७।।

प्रसंगः– बालके गुरूकृतसंस्कारोत्पन्नजातेः श्रेष्ठतां निरूपयति–

अन्वयः– तु, वेदपारगः, आचार्यः, अस्य, यां, जातिं, विधिवत्, सावित्र्या उत्पादयति, सा, सत्या, सा अजरा अमरा च।।२७।।

व्याख्या– तु=पुनः, वेदस्य पारं गच्छति इति वेदपरागः=वेदपारगामी आचार्यः अस्य=शिशोः, यां जातिं=यज्जन्म, विधिना तुल्यं विधिवत्= यथाशासनम् उपनयनपूर्वकं सवित्र्या=गायात्र्युपदेशेन, उत्पादयति=जनयति, सा=जातिः सत्या=तथ्यरूपा, अजरा=जरारहिता, अमरा=मृत्युरहिता च जायते।

भाषा– वेदविद् आचार्य बालक की जिस जाति को उपनयनादि संस्कार यथाविधि गायत्री के उपदेश द्वारा बनाता है, संस्कार से नवीन जन्म देता है, वह जाति सत्य, जरारहित और अमर है।।२७।।

अन्यच्च– **हीयते हि मतिस्तात। हीनैः सह समागमात्।**
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्।।२८।।

प्रसंगः– संगतेः सदसत्फलानि वर्णयति–

अन्वयः– हे तात हीनैः सह समागमात् मतिः हीयते, समैः च समताम् एति, विशिष्टैः च विशिष्टताम् (एति)।।२८।।

व्याख्या– हे तात्! हीनैः=नीचैः, सह समागमात्=संगात्, मतिः=बुद्धिः, हीयते=क्षीयते, नीचतां यातीत्यर्थः, समैः=आत्मतुल्यैः, जनैः, सह समागमात् समतां=समानतां तुल्यतामित्यर्थः, एति=प्राप्नोति, एवं विशिष्टैः=स्वस्मात् अधिकयोग्यताशालिभिः विद्वद्भिः सह समागमात्=संगात्, विशिष्टताम् = अधिकयोग्यताशलिताम्, एति=प्राप्नोति।।२८।।

भाषा – हे पुत्र! नीच व्यक्तियों की संगति करने से बुद्धि क्षीण होती है। अपनी बराबरी के लोगों की संगति से मति समान ही रहती है एवं विशिष्ट लोगों की संगति से विशिष्टता (विद्वता) आदि गुणों को प्राप्त होती है।।२८।।

अत्रान्तरे विष्णुशर्मनामा महापण्डितः सकलनीतिशास्त्रतत्वज्ञो बृहस्पतिरिवाब्रवीत्। "देव! ब्राह्मविधिना पाणिगृहीत्यां भार्यायां समुत्पन्ना ब्रह्मवर्चस्विनस्ते पुत्रा अवश्यं मया नीतिं ग्राहयित्वा बहुश्रुताः कर्तुम् शक्यन्ते। तथाहि–

भाषा – इस प्रकार राजा के कहने पर नीतिशास्त्र के तत्व को जानने वाले बृहस्पति के समान महापण्डित विष्णुशर्मा ने कहा हे–राजन्! ये राजकुमार ब्राह्मविधि से विवाहित धर्मपत्नी से उत्पन्न हुये है इसलिये ब्रह्मतेजस्वी है। मैं इनको अवश्य ही नीतिशास्त्र का उपदेश देकर अनेक शास्त्रों का अध्येता बना सकता हूँ।

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः।।२९।।

प्रसंगः– ब्राह्मदिविवाहमनुजातसंततेः श्रेष्ठतां निरूपयति–

अन्वयः – ब्राह्मादिषु चतुर्ष एव विवाहेषु आनुपूर्वशः पुत्राः ब्रह्मवर्चास्विनः शिष्टसम्मयता च जायन्ते।

व्याख्याः– ब्राह्मः (विवाहः) आदौ येषां ते ब्राह्मादयः तेषु ब्राह्मामदिषु = ब्राह्मादैवार्षप्राजापत्येषु चतुर्षु एवं, विवाहेषु आनुपूर्वशः= अनुक्रमशः पुत्राः, ब्रह्मवर्चस्विनः=श्रुताध्ययनसम्पतितेजोयुक्ताः सन्तः शिष्टसम्मताः = शिष्टप्रियाः, च जायन्ते=भवन्ति।।२९।।

भाषा– ब्राह्म–दैव–आर्ष और प्राजापत्य इन चारों प्रकार के विवाहों के होने पर ही ब्रह्मतेजस्वी और शिष्टलोगों के प्रिय पुत्र हुआ करते हैं।।२९।।

रूपसत्वगुणोपेता धनवन्तो बहुश्रुताः।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः।।३०।।

प्रसंगः— ब्राह्मादिविवाहैर्जातसन्ततेः वैशिष्ट्यं वर्णयति—

अंन्वयः— रूपसत्वगुणोपेताः धनवन्तः, बहुश्रुताः पर्याप्तभोगाः, धर्मिष्ठा जायन्ते, शत च समाः जीवन्ति।।३०।।

व्याख्या—रूपं=मनोहराकृतिः, सत्वं=वेदाभ्यासः — प्राजापत्यादितपश्चरणं शास्त्रार्थावबोधः, इन्द्रियसंयमः, धर्मानुष्ठानम् — आत्मध यानपरते=त्याद्यात्मकं सत्वं, गुणाः—दयादाक्षिण्यादयः, तैरुपेताः—युक्ताः, ध ानवन्तः—धनिनः, बहुश्रुताः—अभ्यस्तबहुशास्त्राः, पर्याप्तः भोगो येषां ते पर्याप्तभोगाः = यथेप्सितवस्त्रगन्धलेपनादिभोगशालिनः, धर्मिष्ठाः=धार्मिकाः च, जायन्ते शतं च समाः=वर्षाणि जीवन्ति।।३०।।

भाषा— सुन्दर आकृतिवाले सत्व और दयादाक्षिण्यादि गुणों से युक्त, धनी, अनेक शास्त्र के अभ्यासी, इच्छानुसार विविधभोगों को भोगने वाले धार्मिक ऐसे पुत्र होते हैं और वे सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं।।३०।।

तेऽन्ये दुष्टाः सुताः शोच्या न कथमापि पाठयितुम् शक्या ये हि इतर विवाविधिानां पाणिगृहीतायां समुत्पाद्यन्ते। यतोहि—

भाषा — इनके अतिरिक्त वे दुष्ट पुत्र चिन्तनीय हैं, किसी तरह पढ़ाये नहीं जा सकते, जो आसुरादि विवाहों द्वारा परिणीत स्त्रियों में उत्पन्न किये जाते हैं। क्योंकि—

इतेरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः।।३१।।

प्रसंगः— आसुरादिविवाहजातसन्ततेः दोषान् निर्दिशति—

अन्वयः— इतरेषु तु शिष्टेषु दुर्विवाहेषु नृशंसानृतवादिनः ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः जायन्ते।।३१।।

व्याख्या— इतरेषु=ब्राह्मणमादिभ्यो भिन्नेषु, शिष्टेषु = आसुर—गन्धर्व — पैशाचराक्षसेषु चतुर्षु दुर्विवाहेषु, नृशंसाश्च = क्रूराश्च अनृतवादिनश्च=असत्य वादिनः ब्रह्म च वेदश्च, धर्मश्च=यागादिश्च ब्रह्मधर्मौ तौ द्विषन्ति ये तथाभूताः=वेदादि—द्वेष्टारः सुताः=पुत्राः, जायन्ते=भवन्ति।।३१।।

भाषा— उक्त ब्राह्मणमादि चार विवाहों के अतिरिक्त बचे हुये आसुरादि चार दुष्ट विवाहों में क्रूरकर्म करने वाले, मिथ्यवादी और यागादि धर्म का द्वेष करने वाले पुत्र होते हैं।।३१।।

अतोऽहमत्र संसदि ध्रुवं प्रतिजाने यत्—"षण्मासाभ्यन्तर एव

महाकुलसम्भूतान् तव शिष्टान् सुतान् अवश्यं नीतिशास्त्राभिज्ञान् करिष्यामीति।" एवं परिषदि प्रतिजानानं तम्पण्डितराजं प्रशंसन्स राजा सविनयं पुनरुवाच–

भाषा – इसलिये मैं इस सभा में इस बात की दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूँ कि "छः महीने के भीतर ही ऊँचे कुल में उत्पन्न आपके इन सुशील पुत्रों को अवश्य ही नीतिशास्त्र का ज्ञाता बना दूँगा।" इस प्रकार सभा में प्रतिज्ञा करने वाले पण्डित विष्णुशर्मा की प्रशंसा करता हुआ वह राजा विनयपूर्वक फिर बोला–

कीटोऽपि सुमनःसंगादारोहति सतां शिरः।
अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः।।३२।।

प्रसंगः– सत्सग्ङतिमहत्वमुपस्थापयति–

अन्वयः– सुमनः संगात् कीटः अपि सतां शिरः आरोहति, अश्मा अपि महद्भिः सुप्रतिष्ठितः (सन्) देवत्वं याति।।३२।।

व्याख्या – कीटोऽपि=तुच्छजन्तुरपि सुमनःसंगात् = पुष्पसम्बन्धात् विद्वत्सम्बन्धाच्च, सतां=देवानां सज्जानानांच शिरः=मस्तकं आरोहति, अश्माऽपि=पाषाणोऽपि, महद्भिः=श्रेष्ठजनैः विद्वद्भिः सुप्रतिष्ठितः=स्थापितः सन् देवत्वं याति।

भाषा – पुष्पों के संग से कीड़ा भी देवता और महापुरूषों के मस्तक पर चढ़ जाता है एवं पत्थर भी महापुरुषों द्वारा प्राण प्रतिष्ठित किये जाने पर देवत्व को प्राप्त होता है।।३२।।

यतश्च विदुषामन्तेवासितयैव विद्याधिगम्यते। यां विद्यामधीत्य कुमारी कुमारो वा सर्वथा स्वाभ्युदयं साधयति।

भाषा – क्योंकि विद्या विद्वानों के समीप रहने पर ही प्राप्त होती है, जिसको पढ़ कर बालक या बालिका अपने अभ्युदय को निश्चित रूप से प्राप्त करते हैं।

तथाहि–

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।
कीर्तिञ्च दिक्षु विमलां वितनोति लक्ष्मीं,
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।३३।।

प्रसंगः– विद्यायाः सर्वप्रयोजनसाधकतां प्रतिपादयति–

अन्वयः– (विद्या) माता इव रक्षति, पिता इव हिते नियुङ्क्ते, कान्ता इव खेदम् अपनीय अभिरमयति, दिक्षु विमलां कीर्तिं लक्ष्मीं च वितनोति। कल्पलता इव विद्या

किं किं न साधयति।।३३।।

व्याख्या— विद्यार्थिनं बालकं बालिकां वा विद्या माता=जननी इव रक्षति= पालयति। पिता इव=जनक इव हिते=हितकर्माणि नियुङ्क्ते=नियोजयति, खेदम्=परिश्रमजन्यमनस्तापम् अपनीय=दूरीकृत्य, कान्तेव=प्रियतमेव, अभिरमयति=मनसः प्रसादमातनोति, दिक्षु=सर्वासु दिक्षु, विमलां, कीर्तिं=यशः, लक्ष्मीं=सम्पदं च वितनोति=विस्तारयति। कल्पलता इव=प्रतिक्षणं मनोरथं पूरयित्री कल्पवल्लीव इयं विद्या, किं किं न साधयति=किं किं न प्रापयति। अर्थात् सर्वविधमेव कल्याणमाकलयतीत्यर्थः।।३३।।

भाषा— विद्या माता की तरह विद्यार्थियों की रक्षा करती है, पिता के तरह अच्छे कामों में उन्हें लगाती है, परिश्रमजन्य मानसिक खेद को दूर कर विवाहित स्त्री की तरह उन्हें प्रसन्न किया करती है, चारों ओर यश और लक्ष्मी का विस्तार करती है। कहाँ तक इसकी महिमा कहें— कल्पवृक्ष की तरह यह क्या—क्या नहीं कर सकती है ।।३३।।

तदेतेषामस्मत्पुत्राणां नीतिशास्त्रोपदेशाय 'तत्रभवन्त एव प्रमाणम्' इत्युक्त्वा स राजा तस्मै विष्णुशर्मणे बहुमानपुरःसरं स्वपुत्रान् गुरुकुलवासार्थं समर्पितवान्।

भाषा— इसलिये मेरे इन पुत्रों को नीति शास्त्रों का उपदेश देने के लिये "जैसा आप उचित समझे वैसा करें" ऐसा कहकर बड़े ही सत्कार के साथ विष्णुशर्मा नाम के पण्डित को उस राजा ने अपने पुत्र गुरुकुल में रहने के लिये सौंप दिये।

इति प्रस्ताविका

***

मित्रलाभः

अथाश्रमप्रासादपृष्ठे सुखोपविष्टानां राजपुत्राणां पुरस्ताद् प्रस्तावक्रमेण स पण्डितोऽब्रवीत्—भो राजपुत्राः! श्रृणुत—

भाषा – (विष्णुशर्मा पण्डित को राजपुत्रों के सौंप दिये जाने पर एक दिन) राजसदन की अट्टालिका (अटारी) पर आनन्दनपूर्वक बैठे हुये राजपुत्रों से बातचीत के प्रसंग में पण्डित विष्णुशर्मा ने कहा—हे राजकुमारों सुनो—

काव्यशास्त्राविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।१।।

प्रसंगः— धीमतां मूर्खाणाञ्च कालयापनप्रकारं निर्दिशति—

अन्वयः— धीमतां कालः काव्यशास्त्रविनोदेन गच्छति, मूर्खाणां (तु कालः)

व्यसनेन, निद्रया कलहेन वा (गच्छति)।।१।।

व्याख्या– धीमताम् = बुद्धिमतां, कालः = समयः, कवेः, कर्म काव्यं तदेव शास्त्रम् तेन यो विनोदः तेन=सरसकाव्याध्ययनजन्यानन्देन (गच्छति, मूर्खाणां तु कालः, व्यसनेन=द्यूतकीडासुरापानादिदुष्टोद्योगेन, निद्रया कहलेन वा गच्छति।

भाषा– बुद्धिमान मनुष्यों का समय काव्यों और शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन द्वारा आनन्दपूर्वक व्यतीत होता है किन्तु मूर्खों का समय नाना प्रकार के दुर्व्यसानों में, निद्रा में या लड़ाई में व्यतीत होता है।।१।।

तद्भवतां विनोदाय काककूर्मादीनां विचित्रां कथां कथयामि।

राजपुत्रैरुक्म्–आर्य! कथ्यताम् विष्णुशर्मोवाच–

श्रृणुत! सम्प्रति मित्रलाभः प्रस्तूयते। यस्मायमाद्यः श्लोकः–

इसलिये आप लोगों के विनोद के लिए मैं कौवा, कछुवा आदि की अदुभत कथा कहता हूँ! राजपुत्रों ने कहा–मान्यवर! कहिये।

विष्णुशर्मा ने कहा– सुनों! इस समय मित्रलाभ नामक प्रथम प्रकरण प्रस्तुत करता हूँ। जिसका यह प्रथम श्लोक है–

असाधानाः वित्तहीनाः बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत्।।२।।

प्रसंगः– बुद्धिमतां कार्यसिद्धिं सोदाहरणं निरुपयितुमुपक्रमते–

अन्वयः– असाधानाः वित्तहीनाः बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः काककूर्ममृगाखुवत् कार्याणि आशु साधयन्ति।।२।।

व्याख्या– न विद्यन्ते साधनानि येषां ते असाधनाः=उपायरहिताः, वित्तेनहीनाः=धनरहिताः परन्तु बुद्धिमन्तः, सुहृत्तमाः=परस्परम् अतिशयेन सौहार्दम् आपन्नाः काकश्च कूर्मश्च मृगश्च आखुश्चेति, काककूर्ममृगाखवः त इव इति काककूर्ममृगाखुवत् = वायसकर्च्छपहरिणमूषकवत् आशु=शीघ्रं कार्याणि, साधयन्ति।।२।।

राजपुत्रा ऊचुः कथमेतत्? विष्णुशर्मा कथयति–

भाषा – राजपुत्र बोलें – यह कैसे? विष्णुशर्मा कहते हैं–

मूलकथा

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिदवसन्नायां रात्रौ अस्ताचलचूडावलम्बिनि

भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः, स कृतान्तमिव द्वितीयमायान्तं व्याधमपश्यत्। 'अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनं जातम्। न जाने किमनभिमतं दर्शयिष्यति।' इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः।

भाषा – गोदावरी नटी के तट पर एक बहुत बड़ा सेमल वृक्ष है, उस पर अनेक दिशाओं और देशों से आकर रात में पक्षिगण निवास करते हैं। एक दिन रात बीतने पर जब कुमुदिनीनायक भगवान चन्द्र अस्त हो रहे थे तब लघुपतनक नाम के कौवे ने घूमते हुए एक व्याघ को ठीक दूसरे यमराज के सामन आते हुए देखा। उसको देखकर सोचने लगा–"आज प्रातः काल अशुभ दर्शन हुआ। न जाने क्या अनिष्ट दिखायेगा?" ऐसा कहकर व्याघ के पीछे–पीछे घबड़ाया हुआ वह कौवा चला।

अथ तेन व्याधेन तण्डुलकणान्विकीयं जालं विस्तीर्णम्। स्वयं प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः। तस्मिन्नेव काले चित्रग्रीवनामा कपोतराजाः सपरिवारो विसर्पस्तांस्तण्डुलकणानवलोकयामास। ततः कपोतराजस्तत्तण्डुलकणलुब्धान् तान्प्रत्याह –' कुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकाणानां संभवः। तन्निरूप्यतां भद्रमिदं न पश्यामि। एतेन मम मनसि अनिष्टस्य शंकासमुत्पद्यते, सन्दिग्धे कर्मणि प्रवृत्तिकरणे भद्रं नैव भवति, तत् प्रायेणानेन तण्डुलकणलोभेना स्माभिरपि तथा न भवतिव्यम्। यथा–'कंकणस्य तु लोभेन' इत्यादि।

भाषा– इसके बाद उस व्याघ ने चावल के कणों को फैलाकर जाल बिछाया और वह छिपकर बैठ गया। उसी समय अपने परिवार के साथ आकाश में उड़ते हुये चित्रग्रीव नाम के कबूतरों के राजा ने फैलाए हुए उन चावल के कणों को देखा और चावल के कणों के लोभी उन कबूतरों से कहा– इस निर्जन जंगल में चावल के कण कहां से आ सकते हैं। इसलिये अच्छी प्रकार विचार करो, मैं यहां पर कल्याण नहीं देख रहा हूँ।' इससे मेरे मन में अनिष्ट की शंका उत्पन्न हो रही है। क्योंकि सन्दिग्ध कार्य में प्रवृत्त होना कल्याणकारक नहीं होता है, इसलिये प्रायः इन चावल के कणों के लोभ से हमलोग भी वैसे ही न हो जायें। जैसा–"सोने के कंगन के लोभ से" इत्यादि।

कंकणस्य तु लोभेन मग्नः पंके सुदुस्तरे।
वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः पथिकः स मृतो यथा।।१।।

प्रसंगः– लोभीपथिकदुर्गतिमुदाहरति–

अन्वयः– कंकणस्य तु लोभेन दुरुस्तरे पंके मग्नः सः पथिकः वृद्धव्याघ्रेण

सम्प्राप्तः यथा मृतः।।१।।

व्याख्या– यथा, कंकणस्य लोभेन = सुवर्णकटकप्राप्तिवांछया, सुदुस्तरे = दुःखेनापि उत्तर्तुमशक्ये, पंके = कर्दमे, मग्नः = निपतितः, सः पथिकः = यात्री वृद्धव्याघ्रेणा सम्प्राप्तः सन् मृतः = पंचत्वं गतः।।१।।

भाषा – जिस प्रकार सोने के कंगन के लोभ से वह वृद्ध पथिक गहरे कीचड़ में फंसकर मर गया और बूढ़े बाघ ने उसे खा लिया।।१।।

कपोता ऊचुः–कथमेतत्? सोऽब्रवीत्–

भाषा – कबूतर बोले–यह कैसे? वह बोला–

वृद्धव्याघ्र तथा लोभाकृष्टपथिक कथा

अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्नपश्यम्–एको वृद्धव्याघ्रः, स्नातः कुशहस्तः सरस्तीरे ब्रूते 'भो भोः पान्थाः। इदं सुवर्णकंकणं गृह्यताम् ततो लोभाकृष्टेन केनचित्पान्थेनालोचितम् – 'भाग्येनैतत्सम्भवति। किन्तु अस्मिन्नात्मसन्देहे प्रवृतिर्न विधेया।' यतः–

भाषा– मैंने एक बाद दक्षिण की ओर के जंगल में घूमते हुये देखा–एक वृद्ध व्याघ्र स्नान करके हाथ में कुशा लेकर तालाब के तट पर कहने लगा– 'अरे यात्रियों! यह सोने का कंगन लो।' इसके बाद लोभ से आकृष्ट होकर किसी यात्री ने सोचा–यह भाग्य से ही होता है (इसलिये ले लें) किन्तु जीवन मरण के स्थान में प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिये क्योंकि–

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा।
यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे।।२।।

प्रसंगः– अनिष्ट संसर्गाद् दुर्गतिः भवतीति कथयति–

अन्वयः– अनिष्टाद् इष्टलाभे अपि शुभा गतिः न जायते, यत्र विषसंसर्गः आस्ते तद् अमृतम् अपि मृत्यवे (भवति)।।२।।

व्याख्या– अनिष्टात्=अहितकरात् इष्टलाभे=हितकरवस्तुलाभे अपि शुभा=शोभना, गतिः=परिणामः न जायते, यत्र=यस्मिन् अमृते, विषसंसर्ग = विषसंयोगः आस्ते, तदपि अमृतं मृत्यवे=नाशाय एवेत्यर्थः।।२।।

भाषा– अनिष्ट वस्तु से यदि कुछ लाभ हो तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होता है जैसे जिस अमृत में विष मिला रहता है वह अमृत भी मृत्यु कारक

ही होता है।।२।।

सर्वत्र जीवननिर्वाहार्थमर्थार्जनप्रवृत्तौ सन्देह एवं। तथा चोक्तम्–

भाषा– सभी जगह धनोपार्जन की प्रवृत्ति में सन्देह होता ही है। जैसे कहा है–

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति।।३।।

प्रसंगः– सर्वत्र संशयसम्भावनां प्रतिपादयति–

अन्वयः– नरः संशयम् अनारूह्य भद्राणि न पश्यति, पुनः संशयम् आरूह्य यदि जीवति (तदा पश्यति)।।३।।

व्याख्या– नरः, संशयम् अनारूह्य=अस्मिन् कर्मणि प्रवृत्तोऽहं जीविष्यामि मरिष्यामि वेति सन्देहारोहणमकृत्वा भद्राणि=शुभकार्याणि न, पश्यति=निरीक्षते, पुनः यदि संशयम् आरूह्य=जीवनं सन्देहे पातायित्वा जीवति=प्राणिति, तदा भद्राणि पश्यति=भूयो भूयः कल्याणमेव लभते इत्यर्थः।।३।।

भाषा – मनुष्य अपने को खतरे में डाले बिना विशिष्ट लाभ नहीं पा सकता यदि खतरे से बच गया तो उस लाभ का सुख वह भोगता ही है।।३।।

अपिच– ईर्ष्या घृणी त्वसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः।।४।।

प्रसंग :– दुःखभागिनो वर्णयति–

अन्वयः– ईर्ष्या, घृणी, असन्तुष्टः क्रोधनः, नित्यशंकितः परभाग्योपजीवी च एते षट् दुःखभागिनः (भवन्ति)।।४।।

व्याख्या– ईर्ष्या = परोत्कर्षासहिष्णुता विद्यते अस्य इति ईर्ष्यी = परोत्कर्षासहिष्णुः घृणा विद्यते अस्य इति घृणी=घृणाशीलः जुगुप्सक इत्यर्थः। असन्तुष्टः = सन्तोषरहितः, क्रोधनः=क्रोधी, नित्यशंकितः=सर्वदा शंकायुक्तः, परभाग्येन उपजीवतीति परभाग्योपजीवी=पराभाग्यमाश्रितः एते षट्=षट्संख्यकाः जनाः दुःखं भजन्त इति दुःखभागिनः=सर्वदा क्लेशभाजा एव भवन्ति।।४।।

भाषा – ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी, प्रत्येक विषय में शंकित रहने वाला और दूसरे के भाग्य के सहारे जीने वाला अर्थात् पराधीन ये छः प्रकार के मनुष्य सर्वदा दुःखी ही रहते हैं।।४।।

तन्निरूपयामीति विचिन्त्य प्रकाशं ब्रूते–'कुत्र तव कंकणम्? व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति। पान्थोऽवदत्–'कथं मारात्मके त्वयि विश्वासः? व्याघ्र उवाच–श्रृणु

रे पान्थ! प्रागेव यौवनदशायामहमतिदुर्वृत आसम्, अनेकगोमानुषाणां वधान्मे पुत्रा मृता दाराश्च वशंहीनश्चाहम्।' ततः केनचिद्धार्मिकेणाऽहमादिष्टः 'दानधर्मादिकं चरतु भवान्' इति। तदुपदेशादिदानीमहं स्नानशीलः, दाता, वृद्धो गलितनखदन्तः कथं न विश्वासभूमिः।

भाषा – पथिक ने विचार किया कि पहले इससे पूछें तो, ऐसा सोचकर उससे पूछा 'तुम्हारा कंगन कहाँ है?' बाघ ने हाथ लम्बा करके दिखा दिया। पथिक बोला–'हिंसात्मक प्रवृत्ति वाले तुम पर मैं कैसे विश्वास करूँ?'

बाघ बोला – पथिक! सुनो, मैं पहले अपनी जवानी में अत्यन्त शिकारी था, जिससे अनेक गायें और मनुष्यों को मारने से मेरे पुत्र और स्त्री सभी मर गये और मैं निर्वंश हो गया। तब किसी धर्मात्मा ने मुझे उपदेश दिया–" आप दान और धर्म आदि किया करें।" उसी उपदेश से अब मैं स्नान करने वाला, दान देनेवाला वृद्ध, हो गया हूँ और दांत तथा नाखून सब जीर्ण हो गये हैं फिर भी मैं विश्वास का पात्र क्यों नहीं हूँ?

मम चैतावांल्लोभविरहो येन स्वहस्तस्थमपि सुवर्णकंकणं यस्मै कस्मैचिद्दातुमिच्छामि तथापि 'व्याघ्रो मानुषं खाददीति' लोकप्रवादो दुर्निवारः।

भाषा – मैं तो इना निर्लोभ (उदार) हो गया हूँ कि जिससे अपने हाथ में आया हुआ सोने का कंगन भी दूसरे किसी को देना चाहता हूँ। फिर भी 'बाघ मनुष्य को खाता है' इस प्रकार लोक में प्रचलित निन्दा को दूर करना असम्भव है।

'तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकंकणं गृहाण।' ततो यावदसौ तद्वचः प्रतीतो लोभात्सरः स्नातुम् प्रविशति तावन्महापंके निमग्नः पलायितुमक्षमः।

तं पंके पतितं दृष्टवां व्याघ्रोऽवदत्–'अहह् महापंके पतितोऽसि। अतस्त्वामहमुत्थापयामि। इत्युक्त्वा शनैः शनैरूपगम्य तेन व्याघ्रेण धृतः।

भाषा– 'इसलिये इस तालाब में स्नान कर इस सोने के कंगन को लो'। इसके उपरान्त जब वह पथिक उस बाघ के वचनों से विश्वास करके लोभ के कारण तालाब में स्नान करने गया तो वहाँ गहरे दल–दल में फंस कर वहां से भागने में असमर्थ हो गया।

उस लोभी पथिक को कीचड़ में फंसा हुआ देखकर बाघ बोला–'अरे रे! तुम गहरे कीचड़ में फंस गये हो। इसलिये मैं तुमको निकालता हूँ।' ऐसा कहकर धीरे धीरे उसके पास जाकर उस बाघ ने उसे पकड़ा।

स पान्थोऽचिन्तयत् –भाषा – तब वह यात्री विचार करने लगा–

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः।।५।।

प्रसंगः— दुरात्मनां स्वभावोऽपरिवर्तनीय इति ब्रूते—

अन्वयः— दुरात्मनः (स्वभावपरिवर्तने) धर्मशास्त्रं पठति इति कारणं न भवति वेदाध्ययनमपि च (कारणं) न (भवति) किन्तु, अत्र तथा स्वभाव एव अतिरिच्यते, यथा गवां पयः प्रकृत्या मधुरं भवति।।५।।

व्याख्या— दुष्टः आत्मा=स्वभावः आचारो वा यस्य सः तस्य दुरात्मनः (स्वभावपरिवर्तने) धर्मशास्त्रं=धर्मप्रतिपादकं शास्त्रं पठति इति कारणं न, वेदाध्ययनं—वेदानां=ऋग्यजुः सामाथर्वणाम् अध्ययनं अपि कारणं न भवति, किन्तु स्वभाव एव अत्र तथा=तेन प्रकारेण अतिरिच्यते=विशिष्यते, यथा—कटु—कषायाम्लादिरसबहुलतृण भक्षणेऽपि गवां पयः प्रकृत्या=स्वभावेनैव मधुरं भवति।।

भाषा— दुष्ट व्यक्ति के (स्वभाव परिवर्तन में) धर्मशास्त्र का पढ़ना अथवा वेदाध्ययन कारण नहीं हो सकता, यहां स्वभाव की प्रधानता उसी प्रकार रहती है जैसे कि कड़ुए कसैले आदि अनेक रसयुक्त, रूखे घासों के खाने पर भी गाय का दूध स्वभावतः मधुर ही हुआ करता है।।५।।

किञ्च— **अवशेन्द्रियचित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।**
दुर्भगाभरणप्रायो ज्ञानं भारः क्रियां विना।।६।।

प्रसंग :— इन्द्रियाधीनानां सर्वकार्यणि निष्फलानीति प्रतिपादयति।

अन्वयः— अवशेन्द्रियचित्तानां क्रिया हस्तिस्नानम् इव (निष्फला भवति) क्रियां विना ज्ञानं दुर्भगाभरणप्रायः भारः (भवति)।।६।।

व्याख्या—अवशानि इन्द्रियाणि = चित्तादीनि येषान्ते, तेषाम् अवशेन्द्रियचित्तानाम् = इन्द्रियपरवशानाम्, क्रिया = धर्मकर्मादिक्रिया हस्तिस्नानमिव व्यर्था भवति। क्रिया = विधिविहताचरणं विना ज्ञानं = शास्त्रध्ययनजन्या प्रज्ञा (निष्फलं भवति) यथा दुर्भाग्याः = पतिसौभाग्यहीनायाः विधवाया इत्यर्थः आभरणं = अलंकारः प्रायः, भार एव भवति।।६।।

भाषा— इन्द्रियाँ और चित्त जिसके वश में नहीं हैं उसके सभी कर्म गजस्नान के समान व्यर्थ होते हैं, जो लोग ज्ञान या विद्या प्राप्त करके भी उसके अनुसार आचरण नहीं करते उनका वह ज्ञान विधवा स्त्री के आभूषणों के समान भारमात्र ही होता है।।६।।

अन्यच्च– स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी,
दश्शतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी।
विधुरपि विधियोगात् ग्रस्यते राहुणाऽसौ,
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः।।७।।

प्रसंग :– ललाटलिखितस्यावश्यम्भावित्वं सोदाहरणं ब्रूते–

अन्वयः– स हि गगनविहारी, कल्मषध्वंसकारी, दशशतकरधरी ज्योतिषां मध्यचारी असौ विधुरपि विधियोगाद् राहुणा ग्रस्यते। इह ललाटे लिखितम् अपि प्रोज्झितुं कः समर्थः (भवति)।।७।।

व्याख्या – स हि=प्रसिद्धः, गगने विहरतीति गगनविहारी = आकाशे विहरणशीलः, कल्मषस्य=पापस्यअन्धकारस्य वा ध्वंसं करोतीति तथाभूतः पापघ्नः अन्धकारघ्नः वा, दशाशतकरधरी–दश=दशावृत्तं शतं दशशतं=सहस्त्रं, करान्=रश्मीन् धरतीति तथाभूतः=सहस्त्रकिरणः, ज्योतिषां मध्ये चरतीति मध्यचारी असौ विधुः=चन्द्रः, अपि, विधियोगात्=भाग्यवशात् राहुणा ग्रस्यते, अत एव ललाटे=भाले, लिखितं, प्रोज्झितुम्, =निराकर्तुं, कः समर्थः न कोऽपीति भावः।।७।।

भाषा – आकाश में विहरण करनेवाला, अन्धकार को मिटानेवाला, हजार किरणोंवाला एवं नक्षत्रों के मध्य में विचरण करने वाला वह प्रसिद्ध चन्द्रमा भी भाग्यवशात् राहु द्वारा ग्रसा जाता है। मस्तक में (भाग्य में) में लिख हुए को मिटाने में कौन समर्थ है? अर्थात कोई नहीं।।७।।

इति चितयन्नेवाऽसौ व्याघ्रेण व्यापादितः खा[दितश्च। अतोऽहं ब्रवीमि–'कंकणस्य तु लोभेन' इत्यादि।

भाषा– ऐसा सोचते हुए उस पथिक को बाघ ने पकड़कर मार डाला और खा लिया। इसलिए मैं कहता हूँ– "कंगन के लोभ से" आदि।

अतः सर्वथाविचारितं कर्म न कर्तव्यम्। यतः–

भाषा– इसलिए बिन सोचे समझे कोई कार्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि–

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।८।।

प्रसंगः– विचारपूर्वककृतस्य कार्यस्यैव सफलत्वं निर्धारयति–

अन्वयः– क्रिया सहसा न विदधीत, अविवेकः परमम् आपदां पदम् (भवति) हि गुणलुब्धाः सम्पदः विमृष्यकारिणं स्वयम् एव वृणुते।।८।।

व्याख्या— क्रियाम्=किमपि कार्यम्, सहसा=हठात् (अविचार्येवेत्यर्थः) न विदधीत= न कुर्वीत, अविवेकः=अविचारिता, आपदां=विपत्तीनां परमं =उत्कृष्ट पदं=स्थानं भवति। गुणलुब्धाः=गुणपक्षपातिन्यः सम्पदः=सम्पत्तयः विमृश्यकारिणं=विचार्यकर्मकर्तारं स्वयम् एव वृणुते=भजन्ते, हि=निश्चयेन।।८।।

भाषा — सहसा कोई काम नहीं कर बैठना चाहिये, विचार किये बिना किया हुआ काम आपत्ति का कारण बनता है। गुणों पर मुग्ध होने वाली सम्पत्ति विचारपूर्वक काम करने वाले को स्वयं जयमाल पहनाती हैं।।८।।

एतत् श्रुत्वा कश्चित्कपोतः सदर्पमाह—आः। 'किमेवमुच्यते?' यतः—

भाषा— चित्रग्रीव के इस वचन को सुनकार कोई कबूतर बड़े अंहकार के साथ बोला —'वाह! आप ऐसा क्यों कहते हैं? क्योंकि—

यतः— शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले।
प्रवृतिः कुत्र कर्तव्या? जीवितव्यं कथं नु वा।।६।।

प्रसंगः— सर्वत्र शङ्काकरणमनुचितमिति वदति—

अन्वयः— भूतले, अन्नं पानं च सर्वम् शंकाभिः आक्रान्तम् कुत्र प्रवृति कर्तव्या कथं नु वा जीवितव्यम्।।६।।

व्याख्या— भूतले, अन्नं=भोजनम् भक्ष्यं, पानं=पेयं, सर्वम्=वस्तुजातं शंकाभिः, आक्रान्तं=व्याप्तम्, कुत्र प्रवृतिः कर्तव्या =कुत्र प्रवर्तितव्यम् वा=अथवा कुत्र न प्रवर्तितव्यम्, कथं वा जीवितव्यम्=भोजनभावे केन प्रकारेण वा प्राणितव्यमिति भावः।

भाषा — क्योंकि पृथ्वी में भोज्य (भक्ष्य), पेय आदि सभी पदार्थ शंकाओं से व्याप्त हैं। ऐसी स्थिति में किसे ग्रहण किया जाय, किसे ग्रहण न किया जाय। यदि सभी पदार्थ छोड़ दिये जायें तो जीवित कैसे रह जाय।।६।।

अतोऽत्र विषये कापि विचारणा न कर्तव्या। किं चेह प्रवृतौ नाहं कंचिद्दोषं पश्यामीति। एतत् श्रुत्वा लोभाकृष्टाः सर्वे कपोतास्तत्रोपविष्टाः।

भाषा— इसलिये इस विषय में कोई विचार नहीं करना चाहिये ऐसा करने में मैं कोई दोष नहीं देख रहा हूँ। यह सुनकार सभी लोभी कबूतर वहां बैठ गये।

यतः— लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम्।।१०।।

प्रसंग :— लोभस्य पतनमूलतां निर्वक्ति—

अन्वयः— लोभात् क्रोधः प्रभवति, लोभात् कामः प्रजायते, लोभात् मोह

नाशः च भवति, लोभः पापस्य कारणम् (अस्ति)।।१०।।

व्याख्या – लोभात् = निरन्तरधनप्राप्तिविषयकाभिलाषवशात् क्रोधः = कोपः प्रभवति = उत्पद्यते, लोभात् कामः = विषयवासना प्रजायते, च लोभात् मोहः = सदसद्विवेकात्मिकाया बुद्धेर्नाशः, मुत्युश्च भवति। किमन्यत्, लोभ एव पापस्य सर्वविधानिष्टस्य कारणमस्ति।।१०।।

भाषा – क्योंकि, लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से विषय भोग आदि कामों में प्रवृति होती है, लोभ से ही मोह और कर्तव्याकर्तव्यरूप बुद्धि का नाश होता है, इसलिऐ लोभ ही सब पापों का कारण है।।१०।।

अन्यच्च– असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति।।११।।

अन्वयः– यद्यपि हेममृगस्य जन्म असम्भवं तथापि रामः मृगाय लुलुभे। समापन्नविपत्तिकाले पुंसां धियः अपि प्रायः मलिनीभवन्ति।।११।।

व्याख्या– हेम्नो मृगः हेममृगः तस्य हेममृगस्य=स्वर्णमृगस्य, जन्म असम्भवं=सम्भवरहितं, तथापि राम,: मृगाय=स्वर्णमृगाय लुलुभे=लुब्धो बभूव, समापन्नविपत्तिकाले=गुप्तापत्तिसमये, पुंसां अपि=विदुषां अपि, धियः=बुद्धयः, प्रायः=बाहुल्येन, मलिनीभवन्ति = कर्तव्याकर्तव्यविचारशून्या भवन्ति।।११।।

अनन्तरं सर्वे जालेन बद्धा बभूवुः। ततो यस्य वचनात्तत्रावलम्बितास्तं सर्वे तिरस्कुर्वन्ति स्म। यतः–

भाषाः– इसके उपरान्त वे सभी कबूतर उस जाल में फंस गये जाल में फंसने के पश्चात् जिस कबूतर के कहने पर वे इस जाल पर आये थे उसको सभी कबूतर धिक्कारने लगे। क्योंकि–

न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिद्धे कार्ये समं फलम्।
यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते।।१२।।

प्रसंगः– नेतृत्वं सर्वत्र शुभकरं न भवतीति प्रतिपादयति–

अन्वय– (कश्चित्) गणस्य अग्रतः न गच्छेत् कार्ये सिद्धे फलं समम् (भवति) यदि तत्र कार्यविपत्तिः स्यात् (सर्वैः) मुखरः हन्यते।।१२।।

व्याख्या– गणस्य=समूहस्य अग्रतः=पुरः अग्रेसरो भूत्वेत्यर्थः न गच्छेत्, यतः कार्ये सिद्धे सति, फलं=लाभः, समं=तुल्यम् भवति, यदि तत्र कार्यविपत्तिः=कार्यहानिः स्यात् तदा मुखरः=प्रवर्तकः अग्रेसर इत्यर्थः हन्यते=तिरस्क्रियते।।१२।।

भाषा– समूह का अग्रणी नहीं बनना चाहिये क्योंकि कार्य सफल हो जा पर सभी को बराबर लाभ होता है और यदि कार्य बिगड़ता है तो अग्रणी मार जाता है। ।१२।।

इत्थं तस्य तिरस्कारं श्रुत्वा चित्रगीव उवाच–अहो नायमस्य दोषः। यतः–

भाषा– इस प्रकार उसके तिरस्कार को सुनकर चित्रग्रीव बोला इसक दोष नहीं है। क्योंकि–

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्।
मातृजंघा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने। ।१३।।

अन्वयः– हितः अपि आपतन्तीनाम् आपदां हेतुताम् आयाति। हि मातृजंघ वत्सस्य बन्धने स्तम्भीभवति। ।१३।।

व्याख्या–हितः=हितकरः अपि जनः, आपन्तीनां=आगच्छन्तीनां आपदां=विपदां, हेतुतां=कारणतां, आयाति, हि=यतः, सत्सस्य=नवजातगोशिशो बन्धने=नियमने, मातुः स्वजन्नया एव जंघा=उरुदेशः, स्तम्भीभवति=स्तम्भ इवाचरति। गोदोहनसमये वत्सम्बन्धनार्थम् निकटे स्तम्भान्तरस्याभावात परमहितैषिण्याः तन्मातुः गोः जघा परमवत्सलस्यापि वत्सस्य बन्धनायम् दोग्ध्र स्तम्भीक्रियते तत्र न कस्यचिद्दोष इति भावः। ।१३।।

भाषा – जो विपत्ति अवश्य आनेवाली होती है, उसमें अपने खास हितैषि निमित्त बन जाते हैं जैसे गाय के दुहने के समय बछडे को बान्धने के लिये उसकी परमहितैषिणी माता की जांघ को ग्वाला खम्भा बना देता है।। १३।।

विपत्काले विस्मय एव कापुरुषलक्षणम् तदत्र धैर्यमवलम्ब्य प्रतीकारश्चिन्त्यताम्। यतः–

भाषा – विपत्ति के समय घबड़ा जाना कायर पुरूषों का स्वभाव है इसलिये ऐसे समय में धीरज धारण करके उसका उपाय सोचना चाहिये क्योंकि–

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्। ।१४।।

प्रसंगः– महात्मलक्षणं निर्दिशति–

अन्वयः– विपदि धैयम् अथ अभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः, यशसि च अभिरुचिः श्रुतौ व्यसनम् इदं हि महात्मनां प्रकृतिसिद्धम्

(भवति)।।१४।।

व्याख्या– विपदि = आपत्प्राप्तौ, धैर्यम् = स्थिरचित्तता, अभ्युदये = सम्पत्प्राप्तौ, क्षमा = अपकारादिसहिष्णुता, विशिष्टसम्पल्लाभेऽपि उद्धतेन केनाचित्साकं स्वयमपि औद्धत्येन न वर्तितव्यकिमति भावः। सदसि = विद्वत्संसदि, वाक्पटुता = वैदुष्यपूर्णं वाङ्नैपुण्यं, युधि = रणभुवि, विक्रमः = पराक्रमः, यशसि = कीर्तौ, यशोलाभ इत्यर्थः अभिरुचिः = अभिलाषः, श्रुतौ=शास्त्रे व्यसनम् = आसक्तिः, इदं = अनन्तरोदीरितमेतत्सर्वं, हि = निश्चितं, महात्मनां = उदारचरितानां, प्रकृतिसिद्धं = स्वभावसिद्धम् भवति। महात्मनो जन्मत एवोपरिनिर्दिष्टगुणवन्तो भवन्तीति भावः।।१४।।

भाषा– विपत्ति आने पर धीरज रखना, उन्नति होने पर शान्त रहना, समरभूमि में साहसी होना, यश के उपार्जन में इच्छा रखना, शास्त्र की आलोचना में अपने को लीन रखना, ये सब बातें महात्माओं में जन्म से सिद्ध हुआ करती हैं।।१४।।

सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च धीरत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम्।।१५।।

प्रसंगः– उत्तमपुत्रस्वरूपं निरूपयति–

अन्वयः– सम्पदि यस्य न हर्षः (भवति) विपदि विषादः न (भवति) रणे च धीरत्वं (भवति), तं भुवनत्रयतिलकं विरलं सुतं (काचिदेव) जननी जनयति।

व्याख्या – सम्पदि = सम्पतौ सत्याम् यस्य न हर्षः, विपदि = विपत्तौ च न, विषादः = खेदः, रणे=संग्रामे धीरत्वं = धैर्यम्, एवभूतं भुवनानां = स्वर्गमर्त्यपातालानां त्रयं तस्य तिलकस्तं भुवनत्रयतिलकं = त्रिलोकरत्नमित्यर्थः सुतं = पुत्रं विरलं = काचिदेव जननी = माता, जनयति = प्रसूते।।१५।।

भाषा – जिसको सम्पति में न प्रसन्नता होती है, न विपत्ति में दुःख होता है और जो युद्ध में भी धैर्य को नहीं छोड़ता है। ऐसे त्रिभुवन के तिलक के समान विरले ही पुत्र को माता जन्म देती है।।१५।।

अन्यच्च– षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा–तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता।।१६।।

प्रसंगः– कल्याणमिच्छतां त्याज्यदोषान् निर्वक्ति–

अन्वयः– इह भूतिम् इच्छता पुरुषेण निद्रा, तन्द्रा भयं, क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता (इति) षडदोषाः हातव्याः।।१६।।

व्याख्या– इह=अस्मिन् संसारे, भूतिम्=सम्पदं कल्याणमिति भावः इच्छता=अभिलषता, पुरुषेण, निद्रा, तन्द्रा=अर्धनिन्द्रा, भयं क्रोधः, आलस्यं=सत्यपि सामर्थ्ये कर्मण्यनुत्साहः दीर्घसूत्रता=शनैः शनैः कार्यसम्पादनता, एते षट् दोषा हातव्या=त्यक्तव्याः ।।१६ ।।

भाषा– इस संसार में अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को निद्रा, ऊंघना, भय, क्रोध आलस्य और छोटे से कार्य में बहुत समय लगाना इन छः दोषों को त्याग देना चाहिये ।।१६ ।।

तदिदानीमप्येवं क्रियताम्। यत् सर्वैरेकचित्तीभूय जालमादायोड्डीयताम्। यतः–

भाषा– इस समय भी ऐसा करें कि सभी एकत्रित हो इसजाल को लेकर उड़ जायें। क्योंकि–

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मतदन्तिनः ।।१७ ।।

प्रसंगः– एकतायाः महत्वं सोदाहरणं निर्दिशति –

अन्वयः– अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका (भवति) गुणत्वम् आपन्नैः तृणैः मतदन्तिनः बध्यन्ते ।।१७ ।।

व्याख्या– अल्पानाम्=अल्पसंख्याकानां, अत्यल्पप्रमाणानामपि वस्तूनां=पदार्थनां जनानां वा, संहतिः=समुदायः, कार्यसाधिका=महत्तरकार्यस्य अपि सम्पादयित्री भवति। यथा गुणत्वं=रज्जुभावम् आपन्नैः=प्राप्तैः, तृणैः, मत्तदन्तिनः मदस्त्राविणः करिणः अपि बध्यन्तें=नियम्यन्ते, वशीकर्तुम् शक्यन्त इति भावः ।।१७ ।।

भाषा – निर्बल या छोटी सी वस्तुओं का समुदाय भी बड़े बड़े कार्यों को कर डालता है, जैसे बहुत से तृण जब संघीभूत होकर रस्से के रूप में परिणत हो जाते हैं तब उससे बड़े बड़े मदमस्त हाथी भी बांधे जा सकते हैं।

संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि।
तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ।।१८ ।।

प्रसंगः– पुनः एकताया महत्वं प्रकारान्तरेण कथयति–

अन्वयः– पुंसाम् अल्पकैः अपि स्वकुलैः सह संहतिः श्रेयसी। तुषेणापि, परित्यक्ताः तण्डुलाः न प्ररोहन्ति ।।१८ ।।

व्याख्या– पुंसां=मनुष्याणां, अल्पकैरपि=स्वल्पसंख्याकैरपि, स्वकुलैः,सह

संहतिः=मेलनम् सम्भूय एकत्रावस्थानमित्यर्थः श्रेयसी =कल्याणकारी भवति। यथा तुषेण=त्वचा अपि=निस्तत्वेनाप्यतितुच्छेन पदार्थेनेत्यर्थः परित्यकताः=वियुक्ताः, अर्थात् निरस्तत्वचः तण्डुलाः न प्ररोहन्ति=अंकुरिताः न भवन्ति।

भाषा– जिनसे कुछ भी कार्य नहीं हो सकता ऐसे भी अपने कुल के लोगों के साथ मिलकर रहना कल्याणकारी होता है। जैसे निःसत्व भी धान की भूसी धान से अलग हो जाने पर चावल को उगने नहीं देती और यदि वही चावल के साथ रह जाती है तो बोने पर वह अंकुरित होता है और वह फूलता–फलता है।।१८।।

इति विचिन्त्य सर्वेऽपि पक्षिण ऐक्यमाहात्म्यमनुस्मरन्तः परस्परमेकचित्तीभूय जालमादायोत्पतिताः। ततस्तेषु चक्षुर्विषयातिक्रान्तेषु पक्षिषु स व्याधो निवृत्तः।

भाषा– ऐसा विचार कर सभी एकता की महत्ता को ध्यान में रखकर एकमत हो एक साथ जाल को लेकर उड गये। इसके पश्चात् वह व्याध पक्षियों के आँखो से ओझल हो जाने पर चला गया।

अथ लुब्धकं निवृत्तं दृष्ट्वा कपोता ऊचुः–किमिदानीं कर्त्तुमुचितम्? चित्रग्रीव उवाच–'यूयं सावधानाः श्रृणुत।'

भाषा– इसके उपरान्त व्याघ को लौटा हुआ देखकर कबूतर बोले–"अब इस समय क्या करना चाहिए?" चित्रग्रीव बोला–तुमलोग सावधान होकर सुनों।'

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः।।१६।।

प्रसंग :– मित्रं स्वभावादेव हितकर्त्तृ भवतीति निरूपयति–

अन्वयः–माता मित्रं पिता च इति त्रितयं, स्वभावात् एव हितम् (भवति) अन्ये च कार्यकारणतः हितबुद्धयः भवन्ति।।१६।।

व्याख्या– माता, पिता, तथा मित्रं चेति = एतत् त्रितयं, स्वभावात् एव हितं = हितकारि भवति, अन्ये = एभ्यः इतरे तु, कार्यकारणतः = कार्यकारणवशात् हितबुद्धयः भवन्ति।।१६।।

भाषा–माता, पिता, और मित्र ये तीनों स्वभाव से ही हितकारी होते हैं। इनसे अतिरिक्त लोग तो अपने–अपने कार्यवश ही हितचिन्तक हुआ करते हैं।।१६।।

तदस्माकं मित्रं हिरण्यको नाम मूषिकराजो गण्डकीतीरे चित्रवने निवसति, सोऽस्माकं पाशांश्छेत्स्यतीत्यालोच्य सर्वे हिरण्यकविवरसमीपं गताः।

हिरण्यकश्च सर्वदा पापशंकया शतद्वारं विवरं कृत्वा निवसति स्म।

भाषा—इसलिए हम लोगों का मित्र चूहों का राजा हिरण्यक नाम का, जो गण्डकीनही के तट पर चित्रवन में रहता है, वह हमारे इस जाल को काटेगा। ऐसा विचार कर सभी हिरण्यक के बिल के समीप गये। हिरण्यक भी हमेशा विघ्न की आशंका के कारण अपने बिल के सौ द्वार बना कर रहता था।

ततो हिरण्यकः कपोतावपातभयाच्चकितस्तूष्णीं स्थितः। चित्रग्रीव उवाच 'सखे हिरण्यक। किमस्मान्न संभाषसे।' ततो हिरण्यकस्तद्वचनं प्रत्यभिज्ञाय ससम्भ्रमं विवराद् बहिर्निःसृत्याब्रवीत् —'आः। पुण्यवानस्मि। यतोहि प्रियसुहृन्मे चित्रग्रीवः समायातः।

भाषा—उसके बाद हिरण्यक कबूतरों के भय से घबड़ाया हुआ चुपचाप बैठा रहा। चित्रग्रीव बोला—'हे मित्र हिरण्यक। हम लोगो से क्यों नहीं बोल रहे हो।' उसके पश्चात् हिरण्यक उसके शब्द को पहचान कर सहसा बाहर निकल कर बोला—'अहो। मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ कि मेरे प्रिय मित्र चित्रग्रीव यहाँ आये हैं।

पश्चात् पाशबद्धांश्चैतान्दृष्ट्वा सविस्मयः क्षणं स्थित्वोवाच—'सखे। किमेतत्? चित्रग्रीवोऽवदत्—'सखे। अस्माकं पूर्वजन्मकर्मणां फलमेतत्। उक्तञ्च—

भाषा— जाल में बँधे हुए उनको देखकर आश्चर्य से चकित होता हुआ हिरण्यक थोड़ी देर के पश्चात् बोला— 'मित्र। यह क्या है?' चित्रग्रीव बोला—'मित्र। हमारे पूर्व जन्म के कर्मो का यह फल है। कहा भी है—

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च,
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा तच्च,
तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति।।२०।।

प्रसंगः— कर्मफलबन्धनस्यापरिहार्यतामुपदिशति—

अन्वयः— यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च, यावच्च यत्र च शुभाशुभम् आत्मकर्म (भवति) तस्माच्च तेन च तथा च तदा च, तावच्च तत्र च विधातृवशात् उपैति।।२०।।

व्याख्या—यस्मात्=यत्कारणात्, येन=येन कारणेन, यथा=येन प्रकारेण यदा=यस्मिन् काले, यत्=यादृशं, यावद्=यावत्परिमितं, यत्र च=यस्मिन् देशे,

शुभमशुभं वा, आत्मकर्म=आत्मनः पुण्यपापदिरूपं कर्म वर्तते, तस्मात्=तस्मात् कारणात्, तेन=तेन कारणेन, तथा प्रकारेण च, तदा=तस्मिन्काले, तत्=तथाभूतं, तावत् परिमितं, तत्र=तत्रैव देशे, विधातृवशात्=विधिवशात् तत् उपैति=प्राप्नोति। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभमिति वचनप्रामाण्यात् कर्मफलस्य अवश्यभोक्तव्यतया कृतं कर्म एव फले परिणतं सत् कर्तारमुगच्छतीत्यर्थः।।२०।।

भाषा– मनुष्य जिस कारण से, जिस उपाय से, जिस प्रकार, जब, जो, जितना और जहाँ पर अच्छा बुरा कर्म करता है, वह उसी कारण से, उसी उपाय से, उसी प्रकार, वैसा ही उसी समय और उसी स्थान पर अपने किये हुए अच्छे या बुरे कर्मो का फल भाग्यवश अवश्य पाता है।।२०।।

रोग–शोक–परीताप–बन्धन–व्यसनानि च।
आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम्।।२१।।

प्रसंगः– अनिष्टे स्वकर्मणामेव कारणत्वं निर्दिशति–

अन्वयः–रोग–शोक–परीताप–बन्धन–व्यसनानि एतानि च देहिनाम् आत्मापराधवृक्षाणां फलानि (भवन्ति)।।२१।।

व्याख्या–रोगः=व्याधिः, शोकः=आत्मीयजननाशजनितं दुःखं, परीतापः रोगशोकाभ्यामतिरिक्तं विविधं मनस्तापरूपं लौकिकं दुखं, बन्धनं=कारागारादिवासः, व्यसनं=विपत्तिः, चकारस्य अनुक्तसमुच्चयार्थकत्वात् रोग–शोक–परीताप–बन्धन–व्यसनभिन्ना अन्या अपि विपत्तयो बोध्याः, एतानि आत्मनः=स्वस्य, अपराध ाा एव वृक्षास्तेषां फलानि=आत्मकर्मणां परिणामरूपाणि सन्तीत्यर्थः।।२१।।

भाषाः– रोग, शोक नाना प्रकार की चिन्ताएं, बन्धन और अन्य प्रकार की विपत्तियां ये प्राणियों द्वारा किये गये पापापराधरूपी वृक्षों के फल हैं।।२१।।

एतत् श्रुत्वा हिरण्यकश्चित्रग्रीवं सान्त्वयन्नुवाच–'सखे चित्रग्रीव। यथा भवद्भिरैकमात्यमश्रितम्, तत्प्रभावेणैव च महतीमिमामापदं समुतीर्य मदीयमिदं स्थानं च समुपलब्धम् तथैवाग्रेऽपीदमैकमत्यं न कदाचन हेयम् एतदेव पुंसां सर्वाग्ङीणं श्रेयः सम्पादयितुमलं भवतीति सर्वथा स्मरणीयम्। यतः श्रुतावप्युक्तम्–

भाषा– इसको सुनकर हिरण्यक चित्रग्रीव को सान्त्वना देता हुआ बोला–'मित्र चित्रग्रीव। जिस प्रकार आप लोगों ने एकता अपनाई और उसके ही प्रभावसे बहुत बड़ी इस आपत्ति को पारकर मेरा स्थान भी पा लिया उसी प्रकार आगे भी अपनी इस एकता को न छोड़े। यह एकता ही पुरुषों के सर्वांगीण

कल्याण को दे सकती है, इसको सर्वथा ध्यान में रखें। क्योकि श्रुति में कहा है कि–

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।२२।।

प्रसंगः– एकताया उत्कर्ष वर्णयति–

अन्वयः–वः आकूतिः समानी, वः हृदयानि समाना, वः मनः समानम् अस्तु यथा वः सुसह असति।।२२।।

व्याख्या–हे ऋत्विग्यजमानाः। वः युष्माकम् आकूतिः = संकल्पोऽध्यवसायश्च समानी=एकविधास्तु, वः=युष्माकं हृदयानि=चेतांसि, समाना=समानानि एकविधानि (सन्तु), वः=युष्माकं मनः=अन्तःकरणम् समानम् अस्तु (अथ) वः=युष्माकं सुसह=शोभनं साहित्यम् असति=अस्तु। अर्थात् मनः शोभन साहित्यवदत्युदारं भवतु। अत्रास्तेर्लेटि बहुलं छन्दसीति शपो लुगभावः। लोटस्थाने लट् इत्यवधेयम्।।२२।।

भाषा– हे यजमानों और पुरोहितों। आपके कर्म और निश्चय एक हों, परस्पर आपके हृदय अभिन्न होवें, जैसा आप लोगों का सुन्दर साहित्य है, उसी प्रकार परस्पर अन्तःकरण भी सुन्दर और सुसंगठित होवें।।२२।।

इत्युक्त्वा तस्य बन्धनं छेत्तुम् सत्वरमुपसर्पति। चित्रग्रीव उवाच–मित्र। मैवम्। प्रथममस्मदाश्रितानामेषां तावत्पाशांश्छिन्धि तदा मम पाशं पश्चाच्छेत्स्यसि।' हिरण्यकोऽप्याह–'अहमल्पशक्तिः दन्ताश्च मे कोमलास्तदेतेषां सर्वेषां पाशांश्छेत्तुम् कथं समर्थः स्याम्। तद्यावन्मे दन्ता न त्रुट्यन्ति तावत्ते पाशं छिनद्मि। तदनन्तरमेषामपि बन्धनं यावच्छक्यं छेत्स्यामि।' चित्रग्रीव उवाच–'अस्त्वेवम्। तथापि यथाशक्त्येतेषामेव बन्धनं प्रथमं खण्डय।' हिरण्यकेनोक्तम्–'आत्मपरित्यागेन यदाश्रितानां परिरक्षणं तन्न नीतिविदां सम्मतम्।' यतः–

भाषा– ऐसा कहकर वह हिरण्यक (चूहा) चित्रग्रीव के जाल को काटने के लिये शीघ्रता से उसके पास गया। चित्रग्रीव बोला–'मित्र। ऐसा मत करो। पहले मेरे आश्रित इन कबूतरों का जाल काटो, फिर मेरा बन्धन काटना।' हिरण्यक भी बोला–'मै अल्पशक्ति हूँ, दाँत भी मेरे कोमल हैं, इसलिये मैं इनके बन्धन को कैसे काट सकूँगा? फिर भी जब तक मेरे दाँत टूटते नहीं तब तक तुम्हारे बन्धन को काटता हूँ उसके पश्चात् इनका बन्धन भी जहाँतक हो सकेगा काटूँगा। 'चित्रग्रीव बोला–'ऐसा ही सही। फिर भी जहाँ तक तुमसे हो सके तो

इनके बन्धन पहले काटो।'हिरण्यक ने कहा–'अपना नाश करके आश्रितों की रक्षा करने का जो सिद्धान्त है उसे नीतिज्ञ लोग उचित नहीं मानते।' क्योंकि–

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः।
तन्निघ्नता किं न हतं रक्षता किं न रक्षितम्।।२३।।

प्रसंगः– प्राणरक्षणं सर्वप्रथमं कर्तव्यमिति निर्दिशति–

अन्वयः– प्राणाः धर्मार्थकाममोक्षाणां संस्थितिहेतवः (भवन्ति) तान् निघ्नता किं न हतम् रक्षता (च) किं न रक्षितम् ।।२३।।

व्याख्या–प्राणाः, धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च=धर्मार्थकाममोक्षाः तेषां धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां पुरुषार्थानां, संस्थितिहेतवः=रक्षाकारणानि भवन्तीति शेषः, तान् प्राणान्, निघ्नता=नाशयता जनेन किं न हतम्=किं न नाशितम्? रक्षता=तथैव तान् प्राणान् पालयता किं न पालितम्? सर्वं पालितम् इति भावः।।२३।।

भाषा– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के अस्तित्व के कारणभूत प्राण ही हैं, इसलिये उनका नाश करने वाले ने क्या नहीं नाश किया और उनकी रक्षा करने वाले ने किसकी रक्षा नहीं की।।२३।।

अन्यच्च– सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
शरीररक्षिता ह्येषा पुरुषार्थचतुष्टयी।।२४।।

प्रसंग :– शरीररक्षायाः महत्त्वं प्रतिपादयति–

अन्वयः–अन्यत् सर्वं परित्यज्य शरीरम् अनुपालयेत्। हि एषा पुरुषार्थचतुष्टयी, शरीररक्षिता वर्तते।।२४।।

व्याख्या– अन्यत् = शरीरसंरक्षणातिरिक्तम्, सर्वं = सकलं प्रपंचम् परित्यज्य = विहाय आदौ शरीरं = देहः, अनुपालयेत् = संरक्षेत्, हि = यतः, एषा = प्रत्यक्षवत् जगति जागरूका, चत्वारः अवयवा यस्य सा चतुष्टयी – पुरुषार्थानां = धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुष्टयी = चतुरवयवा, शरीरक्षिता = शरीरानुपालिता वर्तते।।२४।।

भाषा– और भी देखो–प्राणियों को संसार के सभी प्रपंचो को छोड़कर सर्व प्रथम अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिए। क्योकिं धर्मादि चारों पुरुषार्थों का अस्तित्व शरीर की रक्षा पर निर्भर है।।२४।।

चित्रग्रीव उवाच–'सखे। नीतिस्तु तावदीदृश्येव। किन्त्वहं स्वाश्रितनां दुःखं सोढुम् सर्वथाऽसमर्थः तेनेदं ब्रवीमि। यतः–

भाषा– चित्रग्रीव बोला–'मित्र। नीति तो ऐसी ही है, किन्तु मैं अपने

आश्रितों का दुःख वहन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ, इसलिए ऐसा कह रहा हूँ। क्योंकि–

धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति।।२५।।

प्रसंगः– परार्थे प्राणोत्सर्गस्यौचित्यं प्रतिपादयति–

अन्वयः– प्राज्ञः परार्थे एव धनानि जीवितं च उत्सृजेत्, विनाशे नियते सति सन्निमित्ते त्यागः वरम्।।२५।।

व्याख्या– प्राज्ञः=बुद्धिमान् जनः, धनानि, जीवितं च=प्राणांश्च, परार्थे=परोपकारार्थे एव उत्सृजेत्=त्यजेत्, विनाशे=धनजीवनयोर्नाशे, नियते=निश्चिते सति, सत्=शोभनं निमित्तं=परोपरकारादिरूपं कारणं तस्मिन्, त्यागः=धनस्य जीवितस्य च परित्यागः, वरं=श्रेष्ठः।।२५।।

भाषा– विद्वान् को चाहिये कि परोपकार के लिए ही अपने धन और प्राणों का त्याग करे, धन और जीवन का विनाश जब निश्चित है तब परोपकार आदि अच्छे काम में ही उनका त्याग करना श्रेयस्कार है।।२५।।

अपरंच– यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मलवाहिना।
यशःकायेन लभ्येत तन्न लब्धं भवेन्नु किम्।।२६।।

प्रसंगः– शरीरं परित्यज्य यश उपलब्धेर्महत्त्वं वर्णयति–

अन्वयः– यदि अनित्येन मलवाहिना कायेन नित्यं निर्मलं यशः लभ्येत, किं तत् लब्धं न भवेन्नु।।२६।।

व्याख्या– यदि अनित्येन = नश्वरेण, मलवाहिना = मूत्रपूरीषादिमलाधारेण कायेन = देहेन, नित्यं = अविनाशि, निर्मल = शुभ्रं यशः = कीर्तिः, लभ्येत = प्राप्येत, किं तत् = तर्हि, जनैः, लब्धं = प्राप्तं, न भवेत् वस्तु। अपितु सर्वमेव लब्धं भवेदिति शेषः।।२६।।

भाषा– और भी देखों–यदि नाशवान् और मलों को धारण करने वाले इस घृणित शरीर से स्थायी और निर्मल यश मिले तो क्या नहीं मिला?

इत्याकर्ण्य हिरण्यकः प्रहृष्टमनाः पुलकितः सन्नब्रवीत्–'साधु मित्र! साधु, अनेनाश्रितवात्सल्येन त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते।' एवमुक्त्वा तेन सर्वेषां बन्धनानि छिन्नानि, ततो हिरण्यकः सर्वान्सादरं सम्पूज्याह–'सखे चित्रग्रीव! सर्वथात्रजालबन्धनविधौ दोषमाशंक्यात्मन्यवज्ञा न कर्तव्या।'

भाषा– ऐसा सुनकर हिरण्यक प्रसन्नचित हुआ, आनन्द से रोम–रोम खड़े

हो गये और बोला—'धन्य हो मित्र! धन्य, आश्रितों के प्रति ऐसे प्रेम और वात्सल्यभाव के कारण तुम त्रैलोक्य के भी राजा हो सकते हो। ऐसा कहकर उसने सभी के बन्धन काट दिये। इसके उपरान्त हिरण्यक सभी का उचित र कर बोला—'मित्र चित्रग्रीव। इस जाल बन्धन व्यापार में अपना दोष समझकर मन में अपने आपको अपमानित न समझना।

यतः— शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं, गजभुजंगमयोरपि बन्धनम्।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां, विधिरहो बलवानिति मे मतिः।।२७।।

प्रसंगः— भाग्यमेव सर्वतो बलवत्तरमिति साधयति—

अन्वयः— शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनं, गहभुजंगमयोः अपि बन्धनं, मतिमतां च दरिद्रतां विलोक्य 'अहो! विधिः बलवान्, इति मे मतिः (भवति)।

व्याख्या— शशी = चन्द्रः, दिवकारः = सूर्यः तयोः प्रधानभूतयोरपि सूर्य चन्द्रयोः ग्रहेण = राहुणा पीडनम् = ग्रसनम्, गजः=करी, भुजंगमः = सर्पः तयोः बन्धनं = श्रृंखलया मन्त्रादिना च वशीकरणम्, मतिमतां = बुद्धिमतां, दरिद्रतां = निर्धत्वं च विलोक्यं 'अहो विधिः बलवान् = दैवमेव प्रबलमिति, मे = मम, मतिः = बुद्धिः भवति।।२७।।

भाषा— क्योंकि चन्द्रमा और सूर्य का राहु द्वारा ग्रसा जाना, हाथी और सर्पो का सिक्कड़ों और मन्त्रों द्वारा फंसाया जाना तथा बुद्धिमान लोगों की दरिद्रता देखकर मैं तो समझता हूँ कि भाग्य ही सबसे अधिक प्रबल है।।२७।।

इति प्रबोध्यातिथ्यं कृत्वालिंग्य च चित्रग्रीवस्तेन संप्रेषितो यथेष्टदेशान्सपरिवारो ययौ। हिरण्कोऽपि स्वविवरं प्रविष्टः। अतश्च—

भाषा— इस प्रकार हिरण्यक ने सात्वना देकर सत्कार और आलिंगर करके चित्रग्रीव को भेज दिया और चित्रग्रीव अपने कपोत पिरवार के साथ इच्छानुसार देश को चला गया। हिरण्यक भी अपने बिल में चला गया । इसलिये—

यानि कानि च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च।
पश्य मूषिकमित्रेण कपोताः मुक्तबन्धनाः।।२८।।

प्रसंग :— बहुमित्रकरणमुपयुक्तमिति शिक्षयति—

अन्वयः— (जनेन) यानि कानि च शतानि मित्राणि कर्तव्यानि, पश्य कपोताः मूषिकमित्रेण मुक्तबन्धनाः (बभूवुः)।।२८।।

व्याख्या— यानि कानि च = योग्यानि अयोग्यानि वा, शतानि =

शतंसख्यातोऽप्यधिकानि मित्राणि कर्तव्यानि (यथा) पश्य, मूषिकमित्रेण = सुहृदा सता उन्दुरेण बहवः = कपोताः, मुक्तानि = उन्मोचितानि बन्धानि = पाशबन्धनानि येषां ते तथाभूताः कृताः।।२८।।

भाषा – छोटे हो या बड़े निर्बल हों या सबल हों, अधिक से अधिक संख्या में मित्र बना लेना चाहिये। क्योंकि न जाने किसके द्वारा किस समय कैसा काम निकल जाय। देखो–एक मित्र मूषिक ने अनेक कबूतरों को बन्धनों से मुक्त करा दिया।

अथ लघुपतनकनामा काकःस्तयोर्मिथः संजायमानस्य सर्वकृत्तान्तस्य दर्शी हिरण्यकसमीपं गत्वा साश्चर्यमिदमाह –'अहो हिरण्यक! श्लाध्योऽसि सर्वथा संगमनीयोऽसि। अतोऽहमपि त्वया सह मैत्रीमिच्छामि। अतश्च मामपि मैत्रेयणानुग्रहीतुमर्हसि।' एतत् श्रुत्वा हिरण्यकोऽपि विवराभ्यन्तरादाह–'कस्त्वम्?' स ब्रूते–'लघुपतनकनामा वायसोऽहम्। हिरण्यको विंहस्याह–'का त्वया सह मैत्री।' यतः–

भाषा– इसके पश्चात इस घटना को प्रत्यक्ष देखने वाला लघुपतनक नाम का कौवा हिरण्यक के पास जाकर आश्चर्य के साथ बोला–'हिरण्यक। तुम प्रशंसनीय हो सर्वथा मित्रता के योग्य हों इसलिये मैं भी आप के साथ मित्रता करना चाहता हूँ। अतः आप मुझे मित्र बनाकर अनुगृहीत कीजिये। यह सुनकर हिरण्यक भी बिल के भीतर से बोला–'तुम कौन हो।' वह बोला –'मैं लघुपतनक नामक कौवा हूँ।' हिरणयक हंसकर बोला–'तुम्हारे साथ कैसी मित्रता?' क्योंकि-

भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिर्विपत्तेरेव कारणम्।
श्रृगालात्पाशबद्धोऽसौ मृगः काकेन रक्षितः।।२६।।

प्रसंगः– भक्ष्यभक्षकप्रीतेरनौचित्यमुदाहरति–

अन्वयः– भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः विपतेः एव कारणं (भवति) श्रृगलात् पाशबद्धः असौ मृगः काकेन रक्षितः।।२६।।

व्याख्या – भक्ष्यश्च भक्षकश्च भक्ष्यभक्षकौ तयोः = खाद्यखादकयोः प्रीतिः = मित्रता, विपत्तेः = अनर्थस्य एव, कारणं = हेतुः (भवति) तथाहि श्रृगालात् = जम्बुकात्रत् कपटमित्रात्, पाशेन बद्धः = जालेन नियमितः, असौ मृगः काकेन = वायसेन, रक्षितः = मोचितः।।२६।।

भाषा – भक्ष्य और भक्षक की परस्पर मित्रता विपति का ही कारण होती है जैसे श्रृगाल के कारण जाल में फंसे हुये उस मृग की कौवे ने रक्षा की।

वायसोऽब्रवीत्–'कथमेतत्? हिरण्यकः कथयति–

भाषा – कौवा बोला – यह कैसे। हिरण्यक कहता है–

मृगश्रृगाल कथा

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नामारण्यानी। तस्यां चिरान्महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टांगः केनचिच्छृगालेनांवलोकितः। तं दृष्ट्वा श्रृगालोऽचिन्तयत् – 'आः कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि? भवतु, विश्वासं तावीतद्दुत्पादयामि।' इत्यालोच्य उपसृत्याब्र्–मित्र कुशलं ते? मृगेणोक्तम्–'कस्त्वम्।' स ब्रूते – 'क्षुद्रबुद्धिजम्बुकोऽहम्।" अत्रारण्ये बन्धुहीनो मृतवन्निवसामि। इदानीं त्वां मित्रमासाद्य पुनः सबन्धुर्जीवलोके प्रविष्टोऽस्मि। अधुना तवानुचरेण मया सर्वथा भवितव्यम्।' मृगेणोक्तम् – 'एवमस्तु ततः पश्चादस्तंगते सवितरि भगवति मरीचिमालिनि, तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ। तत्र चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवासतिस्म। तौ दृष्ट्वा काकोऽवदत् – 'सखे चित्रांग्ङ। कोऽयं द्वितीयः? मृगो ब्रूते – 'जम्बुकोऽयमस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः। काको ब्रूते –'मित्र। अज्ञातकुलशीलेन अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता।' तथा चोक्तम्–

मृग और सियार की कथा

भाषा– मगध देश में चम्पावती (चम्पारण) नाम का विशाल जंगल है। उसमें बहुत समय से अत्यन्त स्नेहपूर्वक मृग और कौवा रहते थे। उनमें से उस मोटे ताजे और स्वेच्छापूर्वक घूमने वाले मृगको किसी श्रृगाल ने देखा। उसको देखकर उसने सोचा–'अहो। इसका सुन्दर मांस कैसे खाया जाय? अच्छा तो 'पहले अपने में इसका विश्वास उत्पन्न करायें' ऐसा विचारकर उसके पास जाकर वह बोला–मित्र तुम कुशल से हो?' मृग ने कहा –तुम कौन हो।' सियार बोला मैं क्षुद्रबुद्धि नाम का सियार हूँ। इस वन में बन्धुरहित मरे हुये के समान रहता हूँ। इस समय तुमको मित्र पाकर मित्रवाला मैं जीवलोक में पुनः आ गया हूँ। अब मैं हर प्रकार से तुम्हारा अनुचर बनकर रहूंगा। मृग ने कहा–ऐसा ही सही। उसके पश्चात् किरणों से शोभायमान भगवान् सूर्य के अ हो जाने पर वे (मृग और सियार) दोनों मृग के निवास स्थान पर गये वहां के चम्पा वृक्ष की डाली पर मृगा का पुराना मित्र सुबुद्धि नाम का कौवा रहता था, उसको देखकर कौवा बोला –'मित्र चित्रांग यह दूसरा कौन है? मृग ने कहा– यह श्रृगाल है, हमारी मित्रता चाहता हुआ, यहां आया है। कौवे ने कहा –'कुल और शील बिना

जाने सहसा नवीन व्यक्ति के साथ मित्रता उचित नहीं है। आपने यह ठीक नहीं किया। ऐसा कहा है कि–

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्याचित्।
· मार्जारस्य हि दोषेणे हतो गृध्रो जरद्गवः।।३०।।

प्रसंगः– कुलशीलमविज्ञाय वासदानस्यानौचित्यमुदाहरति–

अन्वयः – अज्ञातकुलशीलस्य कस्यचित् वासः न देयः। हि मार्जारस्य दोषेण जरद्गवः गृध्रः हतः।।३०।।

व्याख्या– कुलं च शीलं च कुलशीले, न ज्ञाते कुलशीले यस्य सः, तस्य अज्ञातकुलशीलस्य = अपरिचितवंशस्वभावस्य, कस्यचित् अपि वासः = आश्रयः न देयः, हि = यस्मात् कारणात्, मार्जारस्य दोषेण = बिडालस्य अपराधेन, जरद्गवः = जरद्गवाभिधः गृध्रः = दृष्टिहीनाः गृध्रपक्षी, हतः = विनाशितः अन्यैः पक्षिभिरिति शेषः ।।३०।।

भाषा– जिस व्यक्ति का कुल और शील (स्वभाव) ज्ञान न हो तो ऐसे किसी को अपने घर में रहने को जगह नहीं देनी चाहिये। ऐसे ही अपरिचित कुल गैर स्वभाववाले बिलार के दोष के कारण बेचारा अन्धा जरद्गव नाम का गीध ा मारा गया।।३०।।

तावाहतुः 'कथेतत्?' काकः कथयति–

भाषा – वे (मृग ौर श्रृगाल) बोले –'यह कैसे?' कौवा बोला–

जरद्गवबिडाल कथा

अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान् पर्कटीवृक्षः। तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकाद्गलितनखनेत्रो निजाहारमप्युपार्जयितुमसमर्थो जरद्गवनामा गृध्रः प्रतिवसतिस्म। प्राणिकर्तव्यमिदमिति कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाहारात्किंचिदुद्धृत्य तस्मै ददति, तेनासौ जीवति, तेषां शावकानां रक्षां च करोति।

अथ कदाचिद्दीर्घकर्णनामा मार्जारः पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्रागतः, ततस्तमायान्तं दृष्ट्वा पक्षिशावकैर्भयार्तैः कोलाहलः कृतः। तत् श्रुत्वा जरद्गवेनोक्तम्–'कोऽयमायाति?' दीर्घकर्णो गृध्रमवलोक्य सभयमाह –'हाः। हस्तोऽस्मि। अधुनाऽस्य सन्निधानात् पलायितुमक्षमः। नीतिस्तु तावदिदमेव कथयति।

जरद्गव और बिडाल की कथा

भाषा– गंगाजी के तटपर गृध्रकूट (गिद्धौर) नाम के पर्वत पर बहुत बड़ा पर्कटी (पाकड़) का वृक्ष है। उसके खोखले भाग में दुर्भाग्य से (वृद्धावस्था के कारण) जीर्ण हो गये हैं नख और नेत्र जिसका, ऐसा एक जरद्गव नाम का गिद्ध रहता था। उस पर कृपा करके उसके जीने के लिए उस वृक्ष पर रहने वाल पक्षी अपने आहार में से कुछ–कुछ निकालकर उसे देते थे। उसी से वह जीवित रहता था और उनके बच्चों की रक्षा करता था।

एक बार सहसा एक दीर्घकर्ण नाम का बिडाल बच्चों को खाने के लिये वहाँ आया। उसको आते देखकर पक्षियों के बच्चों ने भयभीत होकर बड़ा कोलाहल किया। यह सुनकर जरद्गव ने कहा–'यह कौन आ रहा है?' दीर्घकर्ण (बिडाल) गिद्ध को देखकर भय के साथ बोला–'हाय। मैं मारा गया क्योंकि अब यह हमको मारेगा। इस समय तो मैं इसके समीप से भागने में भी असमर्थ हूँ। क्या करूँ, नीति तो यही कहती है कि–

तावद् भयस्य भेतव्यं यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद्यथोचितम्।।३१।।

प्रसंगः– आगतस्य भयस्य प्रतीकारमेवोचितामिति निरूपयति–

अन्वयः– यावत् भयम् अनागतं (भवति) तावत् भयस्य भेतव्यम्, तु भयम् आगतं वीक्ष्य, नरः यथेचितं कुर्यात्।।३१।।

व्याख्या– यावत्=यावत्पर्यन्तं भयं=भयकारणम्, अनागतं=अप्राप्तं भवति तावत्=तावत्कालपर्यन्तमेव, भयस्य=भयहेतोः, भेतव्यं=त्रसितव्यम्, तु=किन्तु भयं=भयकारणम्, आगतं दृष्टवा, नरः, यथोचितं=उपयुक्तं यत्प्रीतकारं तत् कुर्यात्।।३१।।

भाषा– भय का कारण जब तक उपस्थित नहीं होता तभी तक उससे डरना चाहिए किन्तु भय को उपस्थित हुआ देखकर मनुष्य जैसा उचित हो वैसा उसके प्रतीकार का उपाय करना चाहिये।।३१।।

'अतो यद् भवितव्यं तद्भवतु, तावद्विश्वासमुत्पाद्यस्य समीपमुपगच्छामि। इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत्–आर्य। त्वामभिवन्दे। गृध्रोऽवदत्–कस्त्वम्? सोऽवदत्–'मार्जारोऽहम्।' गृध्रो ब्रूते – दूरमपसर नोचेद्धन्तव्योऽसि मया। मार्जारोऽवदत्–'श्रूयताम्! तावदस्मद्वचनम्' ततो यद्यहं वध्यस्तदा हन्तव्यः।

भाषा–इसलिए जो होना होगा वह होगा। तब तक इसमें विश्वास

उत्पन्न करकें इसके समीप जाता हूँ। ऐसा सोचकर उसके निकट जाकर बोला–'आर्य। आपको नमस्कार है।' गिद्ध बोला–तुम कौन हो? वह बोला–'मैं बिडाल हूँ।' गिद्ध ने कहा–'दूर हटो नहीं तो तुम मेरे द्वारा मारे जाओगे।' बिडाल बोला–'पहले मेरा कहना सुन लीजिए।' उसके बाद यदि मै मारने योग्य होऊँ तो मारियेगा।

यतः– जातिमात्रेण किं कश्चिद्धन्यते पूज्यते क्वचित्।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत्।।३२।।

प्रसंगः– मानापमानयोः कारणं व्यवहार एवेति निर्दिशति–

अन्वयः– (जनैः) क्वचित् कश्चित् जातिमात्रेण हन्यते पूज्यते किम्? व्यवहारं परिज्ञाय (एव) वध्यः अथवा पूज्यः भवेत्।।३२।।

व्याख्या– किं क्वचित्=कुत्रचिदपि, कश्चिद् जातिमात्रेण=केवलया जात्या, हन्यते=वध्यते, पूज्यते=अर्च्यते वा? व्यवहारं=आचरणं परिज्ञाय=ज्ञात्वा, एव वध्यः अथवा पूज्यः भवेत्।।३२।।

भाषा– क्योंकि–क्या कहीं कोई केवल जातिमात्र से मारने योग्य अथवा पूजा करने योग्य होता है? व्यवहारको जानकर ही प्राणी मारने योग्य या पूजने योग्य हुआ करता है।।३२।।

गृध्रो ब्रूते–'ब्रूहि किमर्थमागतोऽसि?' सोऽवदत्–'अहमत्र गंगातीरे नित्यस्नायी, निरामिषाशी, ब्रह्मचारी, चान्द्रायणव्रतमाचरंस्तिष्ठामि। 'यूयं धर्मज्ञानरता अतो विश्वासभूमयश्च' इत्यत्रत्या सर्वे पक्षिणः सर्वदा ममाग्रे स्तुवन्ति च। अतो भवद्भ्यो विद्यावयोवृद्धेभ्यो धर्मं श्रोतुमिहागतः। भवन्तश्चैतादृशा धर्मज्ञाः यन्मामतिथिं हन्तुमुद्यताः। गृहस्थधर्मश्चैषः।

भाषा– गिद्ध बोला–'कहों किसलिये आये हों? वह बोला–'यहाँ मैं गंगाजी के तीर पर नित्य स्नान करनेवाला, आमिष रहित (फलाहार आदि) भोजन करने वाला और ब्रह्मचर्यव्रत से रहने वाला, चान्द्रायण व्रत करते हुए रहता हूँ, आप धर्म को जाननेवाले है और विश्वास के पात्र हैं। इस प्रकार सभी पक्षीगण सदा मुझसे आपकी प्रशंसा किया करते हैं। इसलिए विद्या और अवस्था में वृद्ध आपसे धर्म सुनने के लिये मैं यहाँ आया हूँ। लेकिन आप ऐसे धर्म को जानने वाले हैं कि मुझ.अतिथि को ही मारने के लिये उद्यत हो गयें। और गृहस्थ का धर्म भी यह हैं कि–

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः।।३३।।

प्रसंगः— अभ्यागतस्य सत्कारः कर्तव्य एवेति प्रतिपादयति—

अन्वयः— गृहम् आगते अरौ अपि उचितम् आतिथ्यं कार्यम्, द्रुमः पार्श्वगतां छेत्तुः छायां न उपसंहरते।।३३।।

व्याख्या— गृहम् आगते अरौ अपि = शत्रौ अपि, उचितं = व्यवहारोचितम् आतिथ्यं=सत्कारः कार्यम्=कर्त्तव्यम् (पश्य) द्रुमः=वृक्षः, पार्श्वगतां=निकटस्थितां, छेत्तुः=छेदनकर्त्तुः सकाशात् छायां=स्वीयां निरातपतां, न उपसंहरते=न अपसारयति।।३३।।

भाषा— घर में आये हुए शत्रु का भी उचित सत्कार करना चाहिए। देखों—वृक्ष भी अपने काटने वाले के ऊपर की छाया नहीं हटाता अर्थात उसे काटते समय भी छाया में ही रखता है।।३३।।

यदि धनं नास्ति तदा प्रीतिवचसैवातिथिः पूज्य एव। यतः—

भाषा—यदि पास मैं धन भी न हो तो प्रेमपूर्वक मधुर वचनों द्वारा ही क्यों न हो, अतिथि का सत्कार करना ही चाहिये। क्योंकि—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।३४।।

प्रसंग :— सज्जनसम्पाद्यमातिथ्यं निरूपयति—

अन्वयः—तृणानि, भूमिः, उदकं, चतुर्थी सुनृता वाक् च, एतानि अपि सतां गेहे कदाचन न उच्छिद्यन्ते।।३४।।

व्याख्या— तृणानि=उपनिवेशार्थं कुशासनादीनि, भूमिः=श्रमापनयनार्थं निवासस्थानं, उदकं=पादप्रक्षालनाद्यर्थं जलं, चतुर्थी=तुरीया सूनृता=प्रिया सत्या च वाक्=वाणी, एतानि=उक्तानि कुशासनादीनि, अपि=निश्चयेन, सतां गेहे=सज्जनानां गृहे, कदाचिदपि न उच्छिद्यन्ते=न विनश्यन्ति, दुर्लभा न भवन्तीति भावः।।३४।।

भाषा—बैठने को तृण का आसन—चटाई आदि, यातायातजन्य श्रमको दूर करने के लिए स्थान, पैर आदि धोने व पीने आदि के लिए पानी और मधुर तथा सत्यवचन ये चार चीजें तो सज्जनों के घर से कहीं जाती ही नहीं, सज्जनों के यहाँ ये चारों सर्वदा प्रस्तुत रहा ही करती हैं।।३४।।

गृध्रोऽवदत्–'मार्जारो हि मांसरुचिः, पक्षिशावकाश्चात्र निवसन्ति तेनाहमेवं ब्रवीमि।' तत् श्रुत्वा मार्जारो भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति। ब्रूते च–'मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं दुष्करं व्रतं चान्द्रायणमध्यवसितम्। परस्परं विवदमानामपि धर्मशास्त्राणाम्– "अहिंसा परमो धर्म" इत्यत्रैकमत्यम्। यतः–

भाषा– गिद्ध बोला– बिडाल की रूचि माँस खाने की हुआ करती है और यहाँ पक्षियों के बच्चे रहा करते हैं, इसलिए मैं एसा कहता हूँ। ऐसा सुनकर बिडाल भूमि का स्पर्श कर कानों को छूता है और कहता है कि ७ मैने धर्मशास्त्र सुनकर विरक्त होने के कारण कठिन चान्द्रायण नामका व्रत किया हैं। परस्पर विरोधी बातों को कहते हुए भी धर्मशास्त्रो का "अहिंसा परमो धर्मः" इसमें एक ही मत है। क्योंकि–

सर्वहिंसानिवृत्ता ये नराः सर्वसहाश्च ये।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः।।३५।।

प्रसंगः– स्वर्गगामिनरलक्षणं प्रस्तौति–

अन्वयः– ये नराः सर्वहिंसानिवृत्ताः ये च नराः सर्वंसहाः, सर्वस्य आश्रयभूताश्च ने नराः स्वर्गगामिनः।।३५।।

व्याख्या– ये नराः सर्वहिंसानिवृत्ताः = भक्ष्याभक्ष्याणां प्राणिनां या हिंसा = हननम् तस्याः निवृत्ताः, ये नराः, सर्वं = सुखदुःखदिकं सहन्ते इति सर्वंसहाः एवं च ये सर्वस्य = प्राणिमात्रस्य आश्रयभूताः = आश्रयत्वेन स्थिताः सन्ति ते नराः स्वर्गं गच्छन्तीति स्वर्गगामिनः = स्वर्गस्था भवन्तीति शेषः।।३५।।

भाषा– जो मनुष्य सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त हैं, जो सब सहन करते हैं, सभी के आश्रयभूत हैं, वे मनुष्य स्वर्ग में वास करते हैं।।३५।।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति।।३६।।

प्रसंगः– जीवानां धर्म एव परमं मित्रमिति निर्दिशति–

अन्वयः– एकः धर्मः सुहृत्, यः निधने अपि अनुयाति, अन्यत् सर्वं तु शरीरेण समं नाशं गच्छति।।३६।।

व्याख्या– एकः = एकमात्रं धर्म एव सुहृत् = मित्रं यः निधने = मरणे अपि मरणान्तरमपीत्यर्थः अनुयाति = अनुगच्छति, अन्यत् सर्वं तु = अतः पर सर्ववस्तुजातं तु, शरीरेण समं = देहेन सार्धं, नाशं = विलयं गच्छति = याति।।३६।।

भाषा– धर्म ही यथार्थ में एकमात्र है, जो मरने के उपरान्त भी साथ में जाता है, शेष सभी पुत्र, कलत्र, धन, वैभव आदि तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। ।३६।।

इत्येवं कथमपि विश्वास्य स मार्जारस्तरुकोटरे स्थितः। ततो दिनेषु गच्छत्सु असौ पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं खादति। येषामपत्यानि खादितानि तैः शोकार्तैर्विलपद्भिरितस्ततो भक्षयितुर्गवेषणा समारब्धा। तत्परिज्ञाय मार्जारः कोटरान्निःसृत्य बहिः पलायितः। पश्चात्पक्षिभिरितस्ततो निरूपयदभिद्स्तत्र तरुकोटरे शावकास्थीनि प्राप्तानि। अनन्तरम् 'अनेनैव जरद्गवेनास्माकं शावकाः खदिताः, इति सर्वैः पक्षिभिर्निश्चित्य स गृध्रो व्यापादितः। अतोऽहं ब्रवीमि 'अज्ञातकुलशीलस्य' इत्यादि। इत्याकर्ण्य स वंचकः सकोपमाह–मृगस्य प्रथमदर्शनदिने भवानप्यज्ञातकुलशील एव आसीत्। तत्कथं भवता सहैवास्य स्नेहानुवृत्तिरुतरोत्तरं वर्द्धते?

भाषा–इस प्रकार गिद्ध को विश्वास दिलाकर वह बिडाल वृक्ष के खोखले में रहने लगा। इसके अनन्तर कुछ दिनों के बीत जाने पर वह बिडाल पक्षियों के बच्चों पर आक्रमण कर उनको अपने खोखले में लाकर नित्य प्रति खाने लगा। जिनके बच्चे बिडाल ने खा लिये थे उन्होंने दुःखी होकर रोते हुए इधर–उधर अपने–अपने बच्चों को खानेवाले की खोज प्रारम्भ की। यह जानकर बिडाल उस कोटर से बाहर निकल कर भाग गया। इसके पश्चात् अपने–अपने बच्चो को इधर–उधर खोजते हुए पक्षियों को उस वृक्ष के कोटर में अपने बच्चों की हड्डियाँ मिली। इसके उपरान्त 'इसी बुड्ढे गिद्ध ने हमारे बच्चों को खाया' ऐसा पक्षियों ने निश्चित समझकर उस गिद्ध को मार डाला। इसलिए मैं कहता हूँ– 'जिसका कुल और शील न ज्ञात हो'–आदि। ऐसा सुनकर वह सियार क्रोध के साथ बोला–जब प्रथम दिन आपसे मृग की भेंट हुई थीं उस दिन उसके लिए आप भी जो 'अज्ञात कुलशील' ही थे, तब कैसे आपके साथ इनकी सहानुभूति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है?

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाध्यस्तत्राल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। ।३७।।

प्रसंग :– अल्पबुद्धेरपि विज्ञजनाभावे सम्मानो भवतीति निरूपयति–

अन्वयः–यत्र विद्वज्जनः नास्ति तत्र अल्पधीः अपि श्लाध्य, निरस्तपादपे देशे एरण्डः अपि द्रुमायते। ।३७।।

व्याख्या— यत्र=यस्मिन् देशे विद्वज्ज्नः =पण्डितः नास्ति तत्र अल्पा धीर्यस्य सः अल्पधीः अपि=विद्याहीनोऽपीति भावः। श्लाघ्यः=प्रशंसार्हः भवति (यथा) पादैः=मूलैः पिबतीति पादपः निरस्ताः पादपा यस्मात् सः निरस्तपादपः तस्मिन् देशे=वृक्षरहिते देशे इति भावः। एरण्डः अपि=एरण्डनामा अनुपायोगी वृक्षः अपि द्रुमायते=वृक्षत्वेन गण्यते। यत्र देशे महान्तो वृक्षाः न सन्ति तत्र कुत्सितोऽप्येरण्डः विशिष्टवृक्षत्वेन गण्यते इति भावः।।३७।।

भाषा— जहाँ विद्वान लोग नहीं होते वहाँ अल्पबुद्धिवाला मूर्ख भी पण्डित के समान आदरणीय हो जाता है। जैसे जिस देश में वृक्ष नहीं होते वहाँ एरण्ड (रेड) भी वृक्षों में गणना होने लगती है।।३७।।

अन्यच्च— **अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।**
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।३८।।

प्रसंगः— उदाराणां चरित्रं निबध्नाति—

अन्वयः— 'अयं निजः परः वा' इति गणना लघुचेतसाम्, उदारचरितानाम्तु वसुधा एव कुटुम्बकम्।।३८।।

व्यांख्या— अयं निजः = आत्मीयः, अयं परः=अनात्मीयः, इति = इत्थं गणना विचारणा, लघु = क्षुद्रम् चेतः = मानसं येषान्ते तेषां लघुचेतसाम् = क्षुद्राशयानां भवती शेषः। उदारं चरितं येषां तेषाम् उदारचरितानाम् = महानुभावानां तु वसुधा = समग्रा पृथ्वी एव भूलोकस्थ समस्तप्राणिवर्ग एवेत्यर्थः, कुटुम्बकं = आत्मीयकोटिगतं भवतीति शेषः।।३८।।

भाषा— और भी— यह अपना है, यह पराया है, इस प्रकार की गणना संकुचित हृदयवाले व्यक्तियों की होती है जो लोग उदार चित्तवाले होते हैं उनके लिए सारा संसार ही परिवार के समान है।।३८।।

यथा चाऽयं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानापि। मृगोऽब्रवीत्— 'किमनेनोत्तरप्रत्युत्तरेण?' सर्वैरेकत्र विश्रम्भालापैः सुखमनुभवद्भिः स्थीयताम्।

भाषा— जिस प्रकार यह मृग मेरा बन्धु है उसी प्रकार आप भी मेरे बन्धु हैं। मृग बोला—'इस प्रकार के उत्तर प्रत्युत्तर से क्या लाभ? हम लोग सभी एक स्थान पर विश्वासपूर्वक बातचीत करते हुये रहें। क्योंकि—

'न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा।।३६।।

प्रसंगः— शत्रुमित्रभावस्य कारणं व्यवहार एवेति निर्दिशति—

अन्वयः— कश्चित् कस्यचित् मित्रम् न, कश्चित् कस्यचित् रिपु न, व्यवहारेण मित्राणि तथा रिपवः जायन्ते।।३६।।

व्याख्या — कस्यचित् अपि जनस्य कश्चित् अपि जनः मित्रं न भवति, न च कस्यचित् जनस्य कश्चित् जनः रिपुः = शत्रुः भवति, व्यवहारेण (एव) मित्राणि तथा रिपवः = शत्रवः जायन्ते = भवन्तीति भावः।।३६।।

भाषा — किसी भी व्यक्ति का न तो कोई मित्र है और न किसी व्यक्ति का कोई शत्रु है, यह तो व्यवहार से मित्र और शत्रु होते हैं।।३६।।

काकेनोक्तम्—'एवमस्तु' अथ सर्वे यथाभिमतदेशं गतास्ते। एकदा निभृतं श्रृगालो ब्रूते—'सखे मृग। अस्मिन्वनैकदेशे सस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति तदहं त्वां तत्र नीत्वा दर्शयामि।' तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा सस्यं खादति। अथ दिनकतिपयेन क्षेत्रपतिना तद् दृष्टवा पाशाः योजिताः। अनन्तरं पुनरागतश्चरन् मृगस्तत्र पाशैर्बद्धोऽचिन्तयत्— 'को मामितः कालपाशादिव व्याध पाशात् त्रातुं मित्रादन्यः समर्थः।

अत्रान्तरे जम्बुकस्तत्रागत्य उपस्थितोऽचिन्तयत् —'फलितस्तावदस्माकं कपटप्रबन्धः मनोरथसिद्धिरपि प्रायो मे भविष्यति।' एतस्योत्कृत्यमानस्य मांसासृग्लिप्तान्यस्थीनि मयाऽवश्यं प्राप्तव्यानि। तानि बाहुल्येन भोजनानि भवष्यिन्ति।' मृगस्तं दृष्टवोल्लसितो ब्रूते—'सखे। छिन्धि तावन्मम बन्धनम् सत्वरं त्रायस्व माम्। यतः—

भाषा — कौवे ने कहा—'ऐसा ही सही।' इसके पश्चात प्रातः काल होने पर सभी अपने अपने उद्दिष्ट स्थान को चले गये। एक बार सियार ने एकान्त में हरिण से कहा—'मित्र इस जंगल के एक भाग में धानों से भरा हुआ खेत हे। मैं तुम्हें वहां ले जाकर उसे दिखाऊँगा। सियार के दिखा देने पर मृग नित्य उस खेत में जाकर धान खाने लगा। कुछ दिनों के उपरान्त खेत के मालिक ने उसे देखकर उसे फंसाने के लिए जाल बिछा दिया। इसके बाद मृग फिर आया और चरता हुआ जाल में फंस गया और सोचने लगा कि यमपाश के समान इस व्याघ के पास से मुझे छुड़ाने के लिए मित्र के सिवा और कौन समर्थ है।'

इस बीच में सियार वहां आया और ठकर कर सोचने लगा—'मेरी कपट नीति सफल हो गयी प्रायः मेरी अभिलाषा भी पूरी हो गयी। जब इसका चमड़ा उधेड़ा जायगा तो मांस और खून से सनी हुई इसकी हड्डियां तो मुझको अवश्य ही मिल जायेगी जिससे पर्याप्त भोजन होगा। सियार को देखकर वह मृग प्रसन्न

होकर बोला–' हे मित्र। मेरे जाल का बन्धन काटो और शीघ्र मेरी रक्षा करो।' क्योंकि–

आपत्सु मित्रं जानीयाद् युद्धे शूरमृणे शुचिम्।
भार्या क्षीणैषु वित्तेषु, व्यसनेषु च बान्धवान्।।४०।।

प्रसंगः– आत्मीयजनानां परीक्षणस्थानानि निर्दिशति–

अन्वयः– आपत्सु = आपत्तिकालेषु मित्रम्, युद्धे = रणे, शूरं = वीरं, ऋणे = ऋणविषये च शुचिं = शुद्धव्यापारं जानीयात्, वित्तेषु = धनेषु क्षीणेषु सत्सु, भार्याम् = गृहिणीं, व्यसनेषु = संकटेषु सत्सु, बान्धवान् = भ्रातृन् च जानीयात् = अवगच्छेत्।।४०।।

भाषा – आपत्तिकाल में मित्र की, युद्ध काल में वीर की, ऋण देने व लेने के व्यवहार में सत्यता की, निर्धनावस्था में पत्नी की एवं संकटकाल में बान्धवों की परीक्षा होती है।।४०।।

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।४१।।

प्रसंगः– बान्धवलक्षणं निर्दिशति–

अन्वयः– यः उत्सवे व्यसने च, दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे च, राजद्वारे श्मशाने च तिष्ठति स एव बान्धवः।।४१।।

व्याख्या – उत्सवे = पुत्रजन्मविवाहाद्यानन्दोत्सवसमये, व्यसने = विपत्तिकाले दुर्भिक्षे = अन्नाभावसमये, राष्ट्रविप्लवे = राजसंकटसमये, राजद्वारे = न्यायालयादौ, च = तथा, श्मशाने = शवदाहस्थाने, यः तिष्ठति = यः जनः सहायो भवति, सः जनः वस्तुतः बान्धवः भवति।।४१।।

भाषा – पुत्रजन्म और विवाहादि उत्सव कार्यों में, संकटावस्था में, दुर्भिक्ष (अकाल) के समय, जब कि राज्य में क्रान्ति या परिवर्तन हो रहे हों ऐसे अवसर में, न्यायालय आदि में और श्मशान में जो साथ देता है वही बान्धव है।

जम्बुको, मुहुर्मुहुः पाशं विलोक्याचिन्तयत्–दृढबन्धनबद्धोऽस्ति तावदयं मृगः ब्रूते च–'सखे! स्नायुनिर्मिता एते पाशाः। तदद्य भट्टारकरविवासरे कथमेतान्दन्तैः स्पृशामि। मित्र! यदि चित्ते नान्यथा मन्यसे तदा प्रभाते यत्वया वक्तव्यं तत्कर्तव्यम्।' इत्युक्त्वा तत्समीपे आत्मानमाच्छाद्य स्थित। अनन्तरं स काकः प्रदोषकाले मृगमनागतमवलोक्येतस्ततोऽन्विष्य तथाविधं तं दृष्ट्वोवाच–'सखे! किमेतत्?' मृगेणोक्तम्– 'अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलमेतत्।' तथा चोक्तम्–

भाषा– सियार बार–बार जाल पाश को देखकर सोचने लगा– यह मृग दृढ़बन्धनों से बंधा हुआ है। कहने भी लगा –'मित्र नसों तातों के बने हुये ये जाल हैं, आज भगवानसूर्य के दिन रविवार को इनकों मैं कैसे दांत से स्पर्श करूँ। मित्र। यदि हृदय में कुछ दूसरा विचार न करो तो प्रातः काल (कल) जो तुम कहोगे वही करूंगा। ऐसा कहकर वह सियार उसके समीप ही अपने को छिपाकर बैठ गया है। इसके पश्चात् वह कौवा सायंकाल मृग को घर पर न आया देख और इधर–उधर ढूंढकर इस प्रकार जाल में फँसा हुआ उसको देखकर बोला–'सखे। यह क्या? 'मृग ने कहा–'मित्र के वाक्य का अनादर करने का यह फल है।' जैसे कहा भी है–

सुहृदां हितकामानां यः श्रृणोति न भाषितम्।
विपत्सन्निहिता तस्य स नरः शत्रुनन्दनः।।४२।।

प्रसंगः– मित्रवचनतिरस्कर्त्तुर्गतिं वर्णयति।

अन्वयः– यः हितकामानां सुहृदां भाषितं न श्रृणोति तस्य विपत् सन्निहिता, सः नरः शत्रुनन्दनः भवति।।४२।।

व्याख्याः– यः = जनः हितं कामयन्ते इति हितकामाः तेषां = हितचिन्तकानां सुहृदां = मित्राणां, भाषितं = वचनं, न श्रृणोति = न आकर्णयति, तस्य = जनस्य, विपत् = आपत्तिः, सन्निहिता = समीपस्था भवतीति शेषः। स च नरः शत्रून् = अरीन् नन्दयतीति = आनन्दयतीति शत्रुनन्दनः = शत्रूणामानन्दजनकः भवति।।४२।।

भाषाः– जो व्यक्ति अपने हितैषी मित्रों की बातों को नहीं सुनते, ऐसे लोगों की विपत्ति सन्निकट हुआ करती है और वह अपने शत्रुओं को प्रसन्न करने वाले ही होते हैं।।४२।।

काकः कथयति–'स वंचकः क्वाऽऽस्ते?' मृगेणोक्तम् मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव।' काको ब्रूते–मित्र। उक्तमेव मया पूर्वम्–

भाषा– कौवा बोला वह ठग सियार कहां है। मृग ने कहा –'मेरे मांस का इच्छुक यहीं बैठा हुआ है।' कौवा बोला–'मित्र। मैने पहले ही कथा था–

अपराधो न मेऽस्तीति नैतद्विश्वासकारणम्।
विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि।।४३।।

प्रसंगः– निर्दयेभ्यः सर्वेषामेव भयं भवतीति निर्दिशति–

अन्वयः– 'मे अपराधः न अस्ति' इति एतद् विश्वासकरणं न। हि नृशंसेभ्यः

गुणवतामपि भयं विद्यते।।४३।।

व्याख्या– 'मे = मम अपराधः = दोषः न अस्ति' अर्थात् मया न अस्य कश्चिदपि अपराधः कृतः कस्माद् अयं मां पीडयिव्यति, एतत् = एतावन्मात्रम् विश्वासस्य कारणं न भवति। हि = यस्मात् कारणात् नृशसेभ्यः = हिंसकेभ्यः, गुणवतां = विदुषां साधूनाम् अपि भयं विद्यते। ये स्वभावतः एव क्रूरा भवन्ति ते गुणदोषमविचार्यैव निरपराधानामपि साधूनामनिष्टमाचरन्त्वेवेति भावः।।४३।।

भाषा– 'मैंने इनका कोई अपराध नहीं किया' इस प्रकार का विचार विश्वास का कारण नहीं हो सकता। क्रूर स्वभाव वालों से (जो स्वभावतः हिंसक उनसे) निरपराधी साधुओं का भी अनिष्ट हुआ ही करता है।।४३।।

दीपनिर्वाणगन्धञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्।
न जिघ्रन्ति न श्रृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः।।४४।।

प्रसंग :– आसन्नमरणस्य लक्षणं निरूपयति–

अन्वयः– गतायुषः दीपनिर्वाणगन्धं न जिघ्रन्ति, सुहृद्वाक्यं न श्रृण्वन्ति, अरुन्धतीं च न पश्यन्ति।।४४।।

व्याख्या – गतम् आयुः येषान्ते गतायुषः = आसन्नमृत्यवः नराः, दीपस्य निर्वाणं तेन तत्समये वा यो गन्धः दीपनिर्वाणगन्धः तं दीपनिर्वाणगन्धम् = दीपनिर्वाणकालीनगन्धविशेषं न जिघ्रन्ति = नानुभवन्ति, सुहृद्वाक्यं मित्रवचनं च न श्रृणवन्ति एवं च अरुन्धतीं = ताराविशेषं च न पश्यन्ति।।४४।।

भाषा – जिनकी मृत्यु निकट आ गयी है उनको दीपक बुझते समय का गन्ध नहीं मालूम पड़ता है वे अपने मित्रों के वचनों को भी नहीं सुनते और अरुन्ध ाती नाम के तारा भी नहीं देख सकते।।४४।।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।४५।।

प्रसंग :– वर्जनीयमित्रलक्षणमुदाहरति।

अन्वयः– परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनं तादृशं मित्रं पयोमुखं विषकुम्भमिव वर्जयेत्।।४५।।

व्याख्या – परोक्षे = अप्रत्यक्षे गुप्तरूपेण इत्यर्थः, कार्यस्य हन्तारं कार्यहन्तारम् = कार्यव्याघातकरमित्यर्थः प्रत्यक्षे = सम्मुखे, प्रियं = मधुरं वदतीति तं प्रियवादिनं तादृशं = तथाविधं मित्रं पयः = दुग्धं, मुखे = उपरिभागे यस्य सः तं पयोमुखं, विषस्य, कुम्भं = घटमिव वर्जयेत् = त्यजेत्।।४५।।

भाषा – परोक्ष में कार्य को बिगाड़ने वाले और प्रत्यक्ष या सम्मुख में हितकारक और मधुर बातें बोलनेवाले मित्र को, ऊपर दूध दिखलाई पड़ने वाले विष भरे घड़े के समान त्याग देना चाहिये।।४५।।

ततः काको दीर्घं निःश्वस्य आह–'अरे वंचक। किं त्वया पापकर्मणा कृतम्? यतः–

भाषा – तब कौवा लम्बी सांस लेकर बोला–अरे पापी। तूने यह क्या किया?

संलापितानां मधुरैर्वचोभिर्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम्।
आशावतां श्रद्दधतां च लोके किमर्थिनां वंचयितव्यमस्ति।।४६।।

प्रसंगः– पूर्वं विश्वास्य पश्चाद्वञ्चनं न युक्तमिति निर्धारयति।

अन्वयः– लोके मधुरैः वचोभिः संलापितानाम्, मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम् श्रद्दधताम् आशावतां च अर्थिनां किं वंचयितव्यमस्ति?।।४६।।

व्याख्या– लोके=संसारे मधुरैः = प्रियैः, वचोभिः = वचनैः संलापितानां = कृतालापानां, मिथ्या = मिथ्याभूताः ये उपचारा तैः मिथ्योपचारैः = कपटपूर्णव्यवहारैः मारणमोहनउच्चाटनदितान्त्रिकोपचारैः वा, वशीकृतानां = वंशमानीतानां श्रद्धधतां = श्रद्धां कुर्वताम् आशावतां = मनोरथादिलाभाशायुक्तानाम् च, अर्थिनां = याचकनां वंचयितव्यं = वंचनीयं किम् अस्ति, तेषां प्रतारणा भवति किम्? विश्वस्ताः कदाचिदपि न प्रतारणीयाः सन्तीति भावः।।४६।।

भाषा– क्योंकि संसार में मधुर वचनों तथा कपटपूर्ण व्यवहारों या मारण उच्चाटन, मोहन आदि वशीकरणमन्त्रों द्वारा वश में किये गये आशा, और श्रद्धा रखने वाले लोगों को और याचकों को क्या ठगना चाहिये? अर्थात् कभी नहीं।।४६।।

उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसन्धं भवगति वसुधे कथं वहसि?।।४७।।

प्रसंगः– विश्वासघाति निन्दामुपन्यसति–

अन्वयः– यः उपकारिषि विश्रब्धे शुद्धमतौ पापं समाचरति, तम् असत्यसन्धं जनं हे भगवति वसुधे।(त्वं) कथं वहसि?।।४७।।

व्याख्या– उपकारिणि = उपकारके, विश्रब्धे = विश्वस्ते, शुद्धमतौ = निष्कपटशीले, यः पापं = कपटव्यवहारं समाचरति, हे भगवति वसुधे। = हे पृथ्वि। एवंभूतं तं सत्या सन्धा = प्रतिज्ञा यस्यासौ सत्यसन्धः स न भवतीति

तथाभूतस्तम् असत्यसन्धं = मिथ्याभाषिणं जनं त्वं कथं वहसि? = कथं ध ारयसि? ।।४७।।

भाषा – उपकार करने वाले, विश्वास करने वाले, निष्कपट विचार वाले व्यक्ति के साथ जो मनुष्य असत्य अथवा कपट व्यवहार करता है, हे भगवति पृथ्वी। ऐसे मनुष्य को तुम कैसे धारक करती हो?।।४७।।

अथवा स्थितिरियं दुर्जनानाम्–

भाषा– अथवा दुर्जनों का ऐसा ही व्यवहार हुआ करता है–

प्राक्पादयोः पतति खादति पृष्ठामांसं,
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशंकः,
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति।।४६।।

प्रसंग :– खलमशकयोर्व्यवहारसाम्यं निर्दिशति–

अन्वय :– मशकः खलस्य सर्वं चरित्रं करोति, प्राक् पादयोः पतति पृष्ठमांसं खादति, कर्णे किमपि विचित्रं कलं शनैः रौति, छिद्रं निरूप्य अशंकः सन् सहसा प्रविशति।।४६।।

व्याख्या – मशकः = 'मच्छड़' इति नाम्ना भाषायां प्रसिद्धः कीटविशेषः, खलस्य = दुर्जनस्य सर्वं चरितम् = आचरणं, करोति = सम्पादयति, अनुकरोतीत्यर्थः। तद्यथा (सः) प्राक् = सर्वप्रथमं पादयोः पतति = चरणसमीपे उड्डीयते, खलोऽप्यादौ पादनतो भवतीति भावः (अनन्तरमवसरं लब्ध्वा) पृष्ठमांसं खादति = दशति, खलपक्षे = परोक्षे निन्दां करोति। कर्णे = कर्णसमीपे, किमपि = अव्यक्तं यथा स्तातथा विचित्रं = शब्दतः कथयितुमशक्यम् कलं = मधुरं शनैः = मन्दं मन्दं रौति = शब्दायते। पक्षे = प्रतार्य विश्वासयितुं मधुरमालपति, अकस्मात् छिद्रं = रोमकूपं पक्षे आपदवसरं च, निरूप्य = अवलोक्य, सहसा अशंकः = निःशंकः सन् प्रविशति = अन्तर्विशति, मशकः शनैस्त्वचं निर्भिद्यान्तर्दशति, खलोऽपि प्रतार्यास्यान्तरगो भूत्वा नैजं खलत्वं सार्थकीकरोति।

भाषा :– मच्छड़ पहले पैरों पर गिरता है फिर पीठ पर काटता है, दुष्ट व्यक्ति ठगने के लिये पहले पैरों पर गिरता है, और पीठ पीछे निन्दा करता है, कान में धीरे–धीरे गुनगुनाया करता है, फिर मच्छड़ रोमग्रन्थ पाकर एकाएक उसमें घुस जाता है और काटने लगता है, खल भी मौका पाकर मीठी–मीठी बातों

द्वारा अपना काम सिद्ध करता रहता है, इस प्रकार मच्छड़ के सभी चरित्र दुर्जन किया करता है।।४६।।

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम्।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम्।।५०।।

प्रसंगः— दुर्जनस्य प्रियवादिता विश्वासकारणं न भवतीति ब्रूते--

अन्वयः— दुर्जन प्रियवादी च तत् विश्वासकारणं न। जिह्वाग्रे मधु तिष्ठति, हृदि तु हालाहलं विषम् (तिष्ठति)।।५०।।

व्याख्या— दुर्जनः = खलः, प्रियवादी च एतत् = इदमस्य प्रियवादित्वं विश्वासहेतुः, न = नास्ति, यतः तस्य जिह्वाग्रभागे मधु तिष्ठति, हृदि = हृदये तु हालाहालं = विषं तिष्ठतीति शेषः।।५०।।

भाषा— दुर्जन का प्रियवादी होना यह उसके विश्वास का कारण नहीं है, क्योंकि उसके मुख में तो अमृत और हृदय में हालाहल विष भरा रहता है।।५०।।

अथ प्रभाते क्षेत्रपतिर्लगुडहस्तस्तं प्रदेशामागच्छन् काकेनाऽवलोकितः। तमालोक्य काकेनोक्तम्—'सखे मृग! मृतवत्संदर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान् स्तब्धीकृत्य तिष्ठ। अहन्तव चक्षुषी चंच्वा विलिखामि। यदाऽहं शब्दं करोमि तदा त्वमुत्थाय सत्वरं पलायिष्यसे। मृगस्तथैव काकवचनेन स्थितः। ततः क्षेत्रपतिना हर्षोत्फुल्ललोचनेन तथाविधो मृग आलोकितः। आः स्वयं मृतोऽसि। इत्युक्त्वा मृगं बन्धनान्मोचयित्वा पाशान्संवरीतुं सयत्नो बभूव। ततः कियद्दूरमन्तरिते क्षेत्राधिपे काकशब्दं श्रुत्वा स मृगः सत्वरमुत्थाय पलायितः, तमुद्दिश्य तेन क्षेत्रपतिना प्रकोपात् क्षिप्तेन लगुडेन श्रृगालो हतः। तथा चोक्तम्—

भाषा — इसके पश्चात् प्रातःकाल हाथ में डण्डा लेकरआते हुये खेत के रक्षक को कौवे ने देखा। उसको देखकर कौवे ने कहा—'सखे मृग। तुम अपने को मरे हुये की तरह दिखाकर अर्थात् मृतक का बहाना कर हवा से पेट को फुलाकर पैरों को निश्चल करके रहना। मैं तुम्हारी आंखो को अपनी चोंच से खोदूंगा और जब मैं शब्द करूंगा तुम उठकर शीघ्र भाग जाना। मृग उसी प्रकार विश्वासपूर्वक पड़ा रहा उसके बाद खेत के मालिक ने हर्ष से खुली हुई आंखो द्वारा वैसे पडे मृग को देखा और 'आह। स्वयं मर गया' ऐसा कहकर मृग को बन्धनों से मुक्त करके जाल को इकट्ठा करने का प्रयत्न करने लगा। इसके पश्चात् खेत के मालिक के दूर चले जाने पर कौवे के शब्दों को सुनकर वह मृग

शीघ्र उठकर भाग गया। उसको मारने के लिये क्रोध में आकर खेत के मालिक द्वारा फेके गये डण्डे से सियार मर गया । कहा भी गया है–

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते।।५१।।

प्रसंगः– पापकर्मफलस्यावश्भोक्तव्यतां निरूपयति–

अन्वयः– (जनः) अत्युत्कटैः पापपुण्यैः फलम्, इह एव त्रिभिः वर्षै, त्रिभिः मासैः, त्रिभिः दिनैः अश्नुते।।५१।।

व्याख्या – अत्युत्कटैः = अतितीव्रैः पापानि पुण्यानि च तैः पापपुण्यै फलं= परिणामरूपं फलं उत्कटपापपुण्याचरणजनितमित्यर्थः, इह एव = अस्मिन्नेव जन्मनि त्रिभिः वर्षैः त्रिभिः मासैः त्रिभिः पक्षैः अथवा त्रिभिर्दिनैः अश्नुते = प्राप्नोति नर इति शेषः।।५१।।

भाषा – उत्कट पापों या पुण्यों का फल इसी जन्म से तीन वर्ष, तीन मास, तीनपक्ष या तीन दिन में उसके कर्ता को भोगना पड़ता है।।५१।।

अतोऽहं ब्रवीमि–'भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः' इत्यादि। काकः पुनराह – 'अन्यच्चाहं रामस्य सुग्रीववदभिन्नहृदयं मित्रं भूत्वा सर्वथा ते साहाय्यमाचरिष्यामि।'

भाषा – इसलिये मैं कहता हूँ कि –'भक्ष्य और भक्षक की प्रीति' आपत्ति का कारण ही होती है। कौवा फिर बोला –और मैं राम का सुग्रीव की तरह तुम्हारा अभिन्न मित्र बनकर तुम्हारी सदा सहायता करूंगा।

हिरण्यको ब्रूते–चपलस्त्वम् चपलेन सह स्नेहः सर्वथा न कर्तव्यः।

भाषा – हिरण्यक बोला–'तुम चंचल स्वभाव के हो, चंचलों के साथ स्नेह कभी नहीं करना चाहिये।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः?।।५२।।

प्रसंग :– दुर्जनस्य सर्वथा परित्याज्यतां निर्दिशति–

अन्वयः– विद्यया अलंकृतः सन् अपि दुर्जनः परिहर्तव्यः, मणिना भूषितः असौ सर्पः किं भयंकरः न? (भवति)।।५२।।

व्याख्या – विद्यया अलंकृतः सन्नपि = शास्त्रज्ञानभूषितो भवन्नपि, स यदि दुर्जनः, तदा परिहर्तव्यः = वर्जनीयः। मणिना = मस्तकस्थितेन रत्नेन, भूषितः = अलंकृतः असौ = दृष्टान्ततयोपस्थापितः सर्पः किं न भयंकरः न भयावहः? अपि तु सर्वथा भयंकर एवेति भावः।।५२।।

भाषा– यदि दुजर्न विद्या से अलंकृत हो तो भी उसको त्याग देना चाहिये। जैसे –मणि अलंकृत सांप क्या भयदायक नहीं होता? । ।५२ । ।

लघुपतनको ब्रते–'श्रुतं मया सर्वं, तथापि मम चैतावान् संकल्पः यत्वया सह सौहार्दमवश्यं करणीयम्। नो चेत्प्रायोपवेशनं कृत्वाऽऽत्मानं व्यापादयिष्यामि।'

भाषा – लघुपतनक ने कहा–' मैंने सब सुना, फिर भी मेरा दृढ़ निश्चय है कि आपके साथ मित्रता अवश्य करनी चाहिये, यदि ऐसा न हुआ तो निराहार रहकर मैं अपना प्राणत्याग कर दूंगा।

अन्यच्च– भवान् सज्जन इति आबालवृद्धप्रसिद्धिस्तत्कथं भवता सह संगतौ विलम्बो जायते। उक्तं च–

भाषा– दूसरा यह है कि– 'आप सज्जन है' आबाल वृद्धों में ऐसी प्रसिद्धि भी है फिर क्यों आपके साथ मित्रता होने में विलम्ब हो रहा है। कहा भी है–

द्रवत्वात्सर्वलोहानां निमितान्मृगपक्षिणाम्
भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां संगतिदर्शनात्सताम् । ।५३ । ।

प्रसंग :– विभिन्नसग्ङतिकारणानि निर्दिश्य सत्सग्ङतिमुपदशिति।

अन्वयः– सर्वलोहानां द्रवत्वात्, मृगपक्षिणां निमितात्, मूर्खाणां भयात् लोभात् च सतां दर्शनात् संगतिः (भवति) । ।५३ । ।

व्याख्या– सर्वलोहानां = रजतादिसमस्तधातूनां द्रत्वा = द्रवीभावात्, मृगाश्च पक्षिणश्च तेषां मृगपक्षिणां = पशुपक्षिणां, निमितात् = भक्ष्यभूतान्नदानादिहेतोः, मूर्खाणां = मूर्खजनानां भयात् = भयंकारणात् लोभात् = प्रलोभात् च = तथा सतां = सज्जानां, दर्शनात् = दर्शनमात्रादेव, संगतिः भवतीति शेषः । ।५३ । ।

भाषा– द्रव पदार्थ होने के कारण रजतादि सब धातुओं का, अन्न आदि के कारण पशुपक्षियों का, भय और लोभ के कारण मूर्खो का और केवल दर्शन मात्र से साधु महात्माओं का परस्पर मेल होता है । ।५३ । ।

किञ्च नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः । ।५४ । ।

प्रसंगः– सज्जनदुर्जनयोः स्वभावमुदाहरति–

अन्वयः– हि सुहृज्जनाः नारिकेलसमाकाराः दृश्यन्ते, अन्ये बदरिकाकाराः बहिरेव मनोहराः (भवन्ति) । ।५४ । ।

व्याख्या – हि सुहृज्जनाः = सत्पुरुषाः, नारिकेलसमाकाराः =

नारिकेलफल वदन्तर्मधुरकोमलाः, बहिः कुठिनाश्च भवन्ति। अन्ये = इतरे दुर्जनाः बदरिकाकाराः = बदरीफलाकाराः बहिरेव = बर्हिभाग एव, मनोहराः = शोभमाना अन्तःकठिनाश्च दृश्यन्ते।।५४।।

भाषा – और भी सज्जन लोग नारियल के समान बहार से कठोर तथा रूक्ष और भीतर से कोमल तथा मधुर होते हैं, किन्तु दुर्जन लोग बेर के फल के सामान बाहर से ही स्निग्ध और भीतर से कठोर हुआ करते हैं।।५४।।

अन्यच्च– **शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्यं सुखदुःखयोः।**
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्‌गुणाः।।५५।।

प्रसंगः– सन्मित्रगुणान् निर्दिशति–

अन्वयः– शुचित्वं त्यागिता, शौर्यं दुखदुःखयोः सामान्यं, दक्षिण्यम् अनुरक्तिः सत्यता च (एते) सुहृद्‌गुणाः।।५५।।

व्याख्या– शुचित्वं = पवित्रता, त्यागितदा = दानशीलत्वं शौर्यं = शूरता, सुख दुःखयोः = सुखदुःखावस्थयोः, सामान्यं = एकरूपता, दक्षिण्यं = सरलता उदारता च, अनुरक्तिः = आसक्तिः, तथा सत्यता = सत्यावादिता च एते सुहृद्‌गुणाः = मित्रगुणाः भवन्ति।।५५।।

भाषा– और भी– पत्रिता, दानी स्वभाव, वीरता, सुख–दुख में समानता, सरल स्वभाव, उदारपन, लगन और सत्यता ये सात गुण मित्रों के होते हैं।।५५।।

एतैर्गुणैरूपेतो भवदन्यो माया कः सुहृत्प्राप्तव्यस्तदवश्यं मामजर्येण संगतेनानुगृहणातु भवान्। इत्यादि तद्वचनमाकर्ण्य हिरण्यको विवराद् बहिर्निः सृत्याह अहो! आप्यायितोऽनेन वचनामृतेन।'

भाषा – इन गुणों से युक्त मुझे आपको छोड़कर दूसरा और कौन मिलेगा? अतः आप मेरे जैसे व्यक्ति को अपनी दृढ़ मैत्री से अनुगृहीत करें। इस प्रकार के वचनों को सुनकर हिरण्यक बिल से निकल कर बोला–'अहो। आपने मुझे इन अमृतरूपी वचनों से तृप्त कर दिया।'

अन्यच्च– **रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचितता।**
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम्।।५६।।

प्रसंगः– मित्रदूषणानि निर्दिशति–

अन्वयः– रहस्यभेदः, याच्ञा, नैष्ठुर्यं, चलचित्तता, क्रोधः, निःसत्यता, द्यूतं च एतत् मित्रस्य दूषणम् अस्ति।।५६।।

व्याख्या– रहस्यभेदः = गुप्तमन्त्रस्य प्रकाशनं, याच्ञा = द्रव्यादीनां

याचनं, नैष्ठुर्यं = निर्दयता, चलचित्तता = चित्तचांचल्यं, क्रोधो = कोपः, निःसत्यता = मिथ्याभाषित्वं, द्यूतः = द्यूतक्रीड़ा च, एतत् = पूर्वकथितत्तेतत्सर्वं मित्रस्य दूषणम्। यत्रैते दोषास्तिष्ठन्ति तत्र मित्रताया नामापि न ग्राह्यमिति भावः।।५६।।

भाषा– और भी–गुप्त बातों को प्रकाशित करना, धनादि मांगना, निर्दयता, चित्त की चंचलता, क्रोध और झूठ बोलना तथा जुआ खेलना ये सब मित्र के दोष हैं।।५६।।

इत्यनेन वचनक्रमेण तदेकमपि दूषणं त्वयि न लक्ष्यते।यतः–

भाषा – इस प्रकार की आपकी बातों से मित्रता के प्रतिबन्धक दोषों में कोई एक भी आप में लक्षित नहीं हो रहा है क्योंकि–

पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते।
अस्तब्धत्वमचापल्यं प्रत्यक्षेणावगम्यते।।५७।।

प्रसंगः– मित्रगुणप्रत्यक्षप्रकारं निर्दिशति–

अन्वयः– पटुत्वं, सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते, अस्तब्धत्वम् अचापल्यं प्रत्यक्षेण अवगम्यते।।५७।।

व्याख्या– पटुत्वं = चातुर्यं, सत्यवादित्वं = सत्यवादिता, कथायोगेन = कथाप्रसंगेन, बुध्यते = अवगम्यते, अस्तब्धत्वं = अजाड्यं, अचापल्यम्, = अचांचल्यं, प्रत्यक्षेण = दर्शनेनैव अवगम्यते = बुध्यते।।५७।।

भाषा – मनुष्य की चतुरता और सत्यावादिता बातचीत के प्रसंग से मालूम पड़ जाती है और उसकी काम करने की लगन तथा गम्भीरता उसे प्रत्यक्ष देखने से ही मालूम पड़ती है।।५७।।

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।।५८।।

प्रसंग :– महात्मदुरात्मनोरन्तरं प्रतिपादयति–

अन्वयः– दुरात्मनाम्–मनसि अन्यद्, वचसि अन्यत्, कर्माणि अन्यद् (भवति) महात्मना–मनसि एकं, वचसि एकं, कर्मणि एकम् (भवति)।।५८।।

व्याख्या– दुरात्मनां = दुष्टात्मनां, मनसि = हृदये, अन्यत् = अन्यप्रकारकं, वचसि = वचने, अन्यत् = ततो भिन्नं, कर्मणि = कर्तव्ये, अन्यत् = वाङ्मनसयोरुभयोरपि विपरीतं भवति। एवमेव महात्मनां = सच्चरितानां, मनसि एकं = एकप्रकारं, वचसि, एकम् एवं कर्मणि अपि एकमेव प्रकारं (कर्म) तिष्ठति। दुरात्मनाः यच्चिन्तयन्ति बहिस्ततो विपरीतं प्रकटयन्ति, कार्यकाले च ततोऽप्यन्यदेव

किंमप्याचरन्ति, महात्मनस्तु यच्चिन्तयन्ति तदेव बहिः प्रकटन्ति कार्यकाले च तदेव आचरन्त्यपीति भावः ।।५८।।

भाषा – दुष्ट मोग मन में कुछ सोचा करते हैं और बाहर कुछ कहा करते हैं और काम पड़ने पर उन दोनों के विपरीत ही कुछ किया करते हैं। ठीक इस के विपरीत महात्मा लोग मन में जो सोचते हैं वही कहते हैं और काम पड़ने पर वही करके भी दिखाते हैं।।५८।।

'तद्भवतु भवतोऽभिमतमेव' इत्युक्त्वा हिरण्यको मित्रं विधाय भोजनविशेषैर्वायसं सन्तोष्य स्वविवरं प्रविष्टः। वायसोऽपि स्वस्थानं गतः। ततः प्रभृति तयोरन्योन्याहारप्रदानेन कुशलप्रश्नैर्विश्रम्भालापैश्च कालो निवर्तते स्म।

भाषा – 'अच्छा तो आप की इच्छानुसार हो ऐसा कहकर हिरण्यक उस कौवे से मित्रता करके अनेक प्रकार के विशिष्ट भोजनों से उसको प्रसन्न कर अपने बिल में घुसा। कौवा भी अपने स्थान को चला गया। उस दिन से उन दोनों के परस्पर भोजन के आदान–प्रदान से कुशल प्रश्नों और विश्वास पूर्वक प्रेमलाप से समय बीतने लगा।

यतः– ददाति, प्रतिगृह्णाति, गुह्यं वक्ति श्रृणोति च।
भुङ्क्ते भोजयते चैवं षड्विधं प्रीतिलक्षणम्।।५६।।

प्रसंगः– षड्विधं प्रीतिलक्षणं प्रस्तौति–

अन्वयः– ददाति, प्रतिगृह्णाति, गुह्यं वक्ति, श्रृणोति च, भुङ्क्ते, भोजयते च, एवं, षडविधं, प्रीतिलक्षणम् (वर्तते)।।५६।।

व्याख्या– यः = यः पुरूषः, ददाति = वितरति, प्रतिगृहणाति = स्वयंच आददाति, गुह्यं = स्वकीयं रहस्यं, वक्ति = कथयति, श्रृणोति = अन्यदीयं च रहस्यं ससहानुभूतिपूर्वकम् आकर्णयति, भुङ्क्ते = सुहृदो गृहे भोजनं करोति, भोजयते = भोजनं करायति च, एवम् = इत्थं, षड्विधं = षट्प्रकारं, प्रीतिलक्षणं = प्रीतिस्वरूपं वर्तते इति शेषः।।५६।।

भाषा– क्योंकि जो मनुष्य दिया लिया करता है, अपने रहस्य को बताया करता है और दूसरे के रहस्य को सहानुभूति के साथ सुनता है। स्वयं प्रेमी के यहां भोजन करता है एवं अपने यहां कराता है इस तरह के छः प्रकार प्रीति करने के लक्षण कहे गयें है।।५६।।

एकदा लघुपतनको हिरण्यकमाह– 'सखे।कष्टतरलभ्याहारमिदं स्थानम् सम्प्रति संजातम् तदिदं परित्यज्य स्थानान्तरं गन्तुमिच्छामि।'

भाषा – एक बार लघुपतनक ने कहा –मित्र । इस स्थान में आहार अति कष्ट से मिलता है इसलिये इसको छोड़कर दूसरे स्थान को जाना चाहता हूँ।
यतः– स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषाः गजाः।
तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषाः मृगाः।।६०।।

प्रसंग :– महान्त एव स्थानत्यागिनो भवन्तीति उपदिशति–

अन्वयः – सिंहाः सत्पुरुषाः गजाः स्थानम् उत्सृज्य गच्छन्ति, काकाः का पुरुषाः मृगाः तत्रैव निधनं यान्ति।।६०।।

व्याख्या– सिंहाः = मृगेन्द्राः सत्पुरुषा = सज्जनाः, गजाः = हस्तिनश्च, स्थानं = स्वस्थानम्, उत्सृज्य = त्यक्त्वा गच्छन्ति, काकाः = वायसाः कापुरूषाः = अकर्मण्याः जनाः मृगाश्च तत्रैव = स्वस्थाने एव निधनं = मरणं, यान्ति = प्राप्नुवन्ति।।६०।।

भाषा – क्योंकि सिंह, सत्पुरुष और हाथी अपना–अपना स्थान छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं, लेकिन् कौवे, मनुष्य और मृग ये अपने एक ही स्थान पर रहते–रहते मर जाते हैं।।६०।।

हिरण्यको ब्रूते–' मित्र! तर्हि क्व गन्तव्यम्, स्थानान्तरम निश्चित्याधिष्ठितस्थानं न त्याज्यम्।' तथा चोक्तम्–

भाषा– हिरण्यक बोला –'मित्र। तब कहाँ जाना चाहिये? कोई दूसरा स्थान निश्चित किये बिना अपने पूर्वस्थान को नहीं छोड़ना चाहिये।' किसी ने कहा भी है कि–

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्।
न समीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्।।६१।।

प्रसंगः– परदेशगमननीतिं निर्दिशति–

अन्वयः– बुद्धिमान् एकेन पादेन चलति, एकेन तिष्ठति, परं स्थानम् असमीक्ष्य पूर्वम् आयतनं न त्यजेत्।।६१।।

व्याख्या– बुद्धिमान् एकेन पादेन चलति, तथा एकेन=ततः अपरेण, पादेन तिष्ठति=गमनात् विरतो भवति, परम्=अन्यत् स्थानं=देशं, असमीक्ष्य तत्र गमनेन लाभालाभावविचार्य पूर्वं=प्रागधिकृतं, आयतनं=स्थानं न त्यजेत्।।६१।।

भाषा–बुद्धिमान् मनुष्य एक पैर से चलता है और दूसरे पैर से स्थिर रहता है अर्थात् जब तक अगला पैर जमा नहीं लेता तब तक पीछे का पैर नहीं उठाता इसलिए दूसरे स्थान को बिना भली–भाँति समझे अपने पहले स्थान को

नहीं छोड़ना चाहिये।।६१।।

वायसो ब्रूते–मित्र! 'सत्यमेतत्। अस्ति सुनिरूपितं स्थानम्। हिरण्यकोवदत्–'किं तत्?' वायसो ब्रूते–'अस्ति दण्डकारण्ये कर्पूरगौराभिधानं सरः तत्र चिरकालोपार्जितः प्रियसुहृन्मे मन्थराभिधानः कच्छपो धार्मिकः प्रतिवसति।

भाषा– कौवा बोला–'मित्र। यह ठीक कहाँ। स्थान अच्छे प्रकार से देखा हुआ है।' हिरण्यक बोला–कौन स्थान?' कौवा बोला–'दण्डकवन में कर्पूरगौर नामक एक तालाब है। वहाँ मेरा बहुत पुराना प्रिय मित्र मन्थर नाम का कछुआ जो स्वभावतः धार्मिक है वह रहता है।

परोपदेशे पण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः।।६२।।

प्रसंगः– उपदेशापेक्षयाचरणस्य महत्वं प्रतिपादयति–

अन्वयः– सर्वेषां नृणां परोपदेशे पाण्डित्यं सुकरं, धर्मे स्वीयम् अनुष्ठानं तु कस्यचित् महात्मनः भवति।।६२।।

व्याख्या– सर्वेषां नृणाम् परस्मै परस्य वा उपदेशः तस्मिन् पाण्डित्यं सुकरं सुलभं भवतीति शेषः, किन्तु धर्मे = धर्मविषये, स्वीयम् = स्वकीयं अनुष्ठानम् आचरणं कस्यचित् एव महात्मनः भवति। परोपदेष्टारः बहवः सन्ति, आचरणपरायणास्तु विरला एव भवन्तीति भावः।।६२।।

भाषा–दूसरो को उपदेश देने में पाण्डित्य समझना सहज है किन्तु अपने धर्म का स्वयं आचरण बिरला ही कोई महात्मा करता है।।६२।।

स च भोजनविशेषैरावां संवर्द्धयिष्यति। हिरण्यकोऽप्याह – 'यद्येवं तत्किमत्रावस्थायास्माभिः कर्तव्यम्।' यतः–

भाषा– और वह विशेष प्रकार के भोजन देकर हम दोनों को पुष्ट करेगा। हिरण्यक भी बोला–'यदि ऐसा है तो मैं भी यहाँ रहकर क्या करूँगा?' क्योंकि–

यस्मिन्देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः।
न च विद्यागमः कश्चित्तं देशं परिवर्जयेत्।।६३।।

प्रसंगः– कः देशः त्याज्यः? इति प्रश्नमुत्तरयति–

अन्वयः– यस्मिन् देशे न सम्मानः, न वृत्तिः न च बान्धवः कश्चित् विद्यागमश्च न (भवेत्) तं देशं परिवर्जयेत्।।६३।।

व्याख्या–यस्मिन् देशे=प्रदेशे सम्मानः=सत्कारः, न=न भवेत्,

वृत्तिः=जीविका न=न भवेत्, बान्धवः=आत्मीयः न=नास्ति, न च कश्चित् विद्यायाः आगमः=विद्यालाभो भवेत् त देशं परिवर्जयेत्।।६३।।

भाषा–जिस देश में न सत्कार हो, न आजीविका का कोई साधन हो, न बन्धुजन रहते हों और न कोई विद्या प्राप्ति का मार्ग हो उस देश को त्याग देना चाहिए।

ततो यथेच्छं शुभेऽहनि गच्छावस्तत्र। अथ शुभदिने प्रस्थितो वायसस्तत्र तेन मित्रेण सह विचित्रालापैः सुखेन तस्य सरसः समीपं ययौ। ततो मन्थरो दूरादवलोक्य लघुपनतकस्य यथोचितमातिथ्यं विधाय मूषिकस्यातिथिसत्कारं चकार। यतः–

भाषा– इस कारण अच्छे मुहूर्त में हम दोनों वहाँ चले। अनन्तर कौए लघुपतक ने मित्र हिरण्यक के साथ अच्छे मुहूर्त में प्रस्थान किया। तरह–तरह की बातें करता हुआ वह उस सरोवर के समीप पहुँचा। उसके बाद दूर से ही देख कर मन्थर ने लघुपतनक उचित अतिथि सत्कार कर चूहे हिरण्यक का भी सत्कार किया। क्योकि–

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्वीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।।६४।।

प्रसंगः– अतिथिमहत्वं प्रतिपादयति–

अन्वयः– अग्निः द्विजातीनां गुरुः, ब्राह्मणः वर्णानां गुरुः, स्त्रीणां एकः पति एव गुरुः, अभ्यागतः सर्वस्य गुरुः।।६४।।

व्याख्या– अग्निः = वह्निः द्विजातीनां = ब्राह्मण–क्षत्रिय–विशां गुरुः भवति, ब्राह्मणः = वर्णानां = चतुर्णामपि वर्णानां गुरुः भवति, एकः पतिः = केवलं पतिरेव, स्त्रीणां = नारीणां गुरुः भवति, किन्तु अभ्यागतः = अतिथिः सर्वस्य = सर्वस्यापि लोकस्य गुरुः भवति।।६४।।

भाषा–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का गुरू अग्नि है, तथा ब्राहमण चारों वर्णो का गुरू है, स्त्रियों का गुरु एकमात्र पति है, तथा अतिथि सबका गुरू है।।६४।।

वायसोऽवदत्– 'सखे मन्थर। सविशेषपूजामस्मै विधेहि।' यतोऽयं पुण्यकर्मणां धुरीणः कारुण्यरत्नाकरो हिरण्यकनामा मूषिकराजः। इत्युक्त्वा चित्रग्रीवोपाख्यानं वर्णितवान्। मन्थरः सादरं हिरण्यकं संपूज्याह–'भद्र। यदि न रहस्यं तदा आत्मनो निर्जनवनागमनकारणमाख्यातुमर्हसि।'

हिरण्यकोऽवदत्–'सुहृदोऽग्रे किं गोपनीयम्।'

भाषा– कौवा बोला– मित्र मन्थर। इनकी विशेष रूप से पूजा करो। क्योकि चूहों के राजा हिरण्यक पुण्यात्माओं में अग्रणी है, करूणा के सागर है। ऐसा कहकर उसने चित्रग्रीव की सम्पूर्ण कथा कहीं। मन्थर ने आदर के साथ हिरण्यक का आतिथ्य सत्कार कर कहा–

'हे भद्र। यदि कोई रहस्य न हो तो अपने इस निर्जन वन में आने का कारण बताइये।' हिरण्यक बोला–'मित्र के आगे क्या छिपाना है।'

सुहृदि निरन्तरचित्ते गुणवति भृत्येऽनुवर्तिनि कलत्रे।
स्वामिनि शक्तिसमेते निवेद्य दुःखं सुखी भवति।।६५।।

प्रसंगः– केषामग्रे दुःखनिवेदनं कर्त्तव्यमिति निर्दिशति–

अन्वयः– निरन्तरचित्ते सुहृदि, गुणवति भृत्ये, अनुवर्तिनि कलत्रे, शक्तिसमेते स्वामिनि, दुःखं निवेद्य सुखी भवति, लोक इति शेषः।।६५।।

व्याख्या– निर्गतम् अनन्तरं यस्मात् तन्निरन्तरम्, तथाभूतं चित्तं यस्य असौ निरन्तरचित्तस्तस्मिन् निरन्तरचित्ते=अभिन्नहृदये सुहृदि=मित्रे, गुणवति=गुणिनि भृत्ये=दासे, अनुवर्तिनि =अनुकूले कलत्रे=भार्यायां, शक्तिसमेते=धनजनबलसम्पन्ने स्वामिनि=प्रभौ, दुःखं=मानसिकं कष्टं, निवेद्य=श्रावयित्वा लोकः सुखी=अपगतदुःखः भवति=जायते।।६५।।

भाषा– अभिन्नहृदयी मित्र को, गुणी नौकर को, अपने अनुकूल रहने वाली स्त्री को, बलवान् मालिक को दुःख सुनाने पर लोक सुखी होता है।।६५।।

तत्कथयामीति श्रूयताम्। भाषा–इसलिये कहता हूँ सुनिये–

मूषकपरिव्राजक कथा

अस्ति चम्पकाभिधानायां नगर्यां परिव्राजकावसथः। तत्र चूडाकर्णो नाम परिव्राट् प्रतिवसति। स च भोजनावशिष्टभिक्षान्नसहितं भिक्षापात्रं नागदन्तकेऽवस्थाप्य स्वपिति। अहं च तदन्नमुत्प्लुत्योत्प्लुत्य प्रत्यहं भक्षयामि। अनन्तरं तस्य प्रियसुहृद्वीणाकर्णो नाम परिव्राजकः समायातः। तेन सह कथाप्रसंगावस्थितो मम त्रासार्थं जर्जरवंशखण्डेन चूडाकर्णो भूमिमताडयत्। वीणाकर्ण उवाच–'सखे किमिति, कथं कथाविरक्तोऽन्यासक्तो भवान्?

मूषक और परिव्राजक की कथा

भाषा– चम्पकवती नगर में साधुओं का एक मठ है वहाँ चूडाकर्ण नाम का साधु रहता था। वह अपने भोजन के पश्चात् बचे हुए भिक्षान्न को पात्र सहित खूँटी पर लटकाकर सोया करता था और मैं उस अन्न को उछल–उछल कर प्रतिदिन खाता था। एक दिन उसका प्रिय मित्र वीणाकर्ण नामक साधु आया। उसके साथ बातचीत करता हुआ चूडाकर्ण मुझ को डराने के लिए पुराने बाँस का टुकड़ा भूमि पर पटकने लगा। वीणाकर्ण बोला–'मित्र। आप इस प्रकार मेरी बातों से विरक्त होकर दूसरी ओर कैसे आसक्त हो गये, यह क्या बात है?'

चूडाकर्णेनोक्तम्–'मित्र! नाऽहं त्वत्कथाविरक्तः। किन्तु पश्यायं मूषिको ममाऽपकारी सदा पात्रस्थं भिक्षान्नमुत्प्लुत्य भक्षयति।' वीणाकर्णो नागदन्तकं विलोक्याह–'कथं मूषिकः स्वल्पबलोऽप्येतावद्दूरमुत्पतति?' तदत्र मूषिकबलोपष्टम्भे केनापि कारणेन भवितव्यम्। ततः विचिन्त्य, क्षणं पुनस्तेनैवोक्तम्–'कारणं चात्र धनबाहुल्यमेव भविष्यति।'

भाषा– चूडाकर्णने कहा–'मित्र। आपकी कथा से मैं विरक्त नहीं हूँ, किन्तु देखिये मेरा यह अपकारी चूहा मेरे पात्र में रक्खे हुए भिक्षा के अन्न को उछल–उछल कर सदा खाया करता हैं। वीणाकर्ण ने खूटी को देखकर कहा कि–'चूहा अल्पबली होता हुआ भी कैसे इतना ऊँचा कूदता है। इसके बल की अधिकता में कोई कारण अवश्य होना चाहिये। इसके बाद थोड़ी देर सोचाकर पुनः साधु ने कहा कि–'यहाँ बहुत धन होगा।'

यतः– धनवान्बलबाँल्लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा।
प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामम्युपजायते।।६६।।

प्रसंगः– मलोके धनमहत्वं निरूपयति–

अन्वयः– लोके सर्वः धनवान् सर्वदा सर्वत्र बलवान् (भवति) हि राज्ञामपि प्रभुत्वं धनमूलम् उपजायते।।६६।।

व्याख्या–लोके = पृथिव्यां, सर्वः = समस्तः, धनवान् सर्वत्र = सर्वस्मिन् प्रदेशे सर्वदा = सर्वस्मिन् काले, बलवान् = बलशाली भवति। हि = यतः राज्ञामपि = नृपतीनाम् अपि प्रभुत्वं = स्वामित्वं, धनमूलम् एव = धानकारणकमेव उपजायते=भवति।।६६।।

भाषा– सभी धनी पुरुष इस संसार में सर्वत्र और हर समय बलवान् होते हैं इतना ही नही, प्रत्युत् राजाओं के भी प्रभु बनने का मूल कारण धन ही होता

है।।६६।।

ततः खनित्रमादाय तेन विवंर खनित्वा चिरसंचितं मम धनं गृहीतम्। ततः प्रभृति निजशक्तिहीनः सत्वोत्साहरहितः स्वाहारमप्युत्पादयितुमक्षमः सत्रासं मन्दंमन्दमुपसर्पंश्चूडाकर्णेनावलोकितः। ततस्तेनोक्तम्– 'अहो! स एवायमुन्दुरो यो वित्तबलेन श्वस्तावद् दूरमुत्पपतति स्म, अद्य धनाभावेन गन्तुमप्यसमर्थः संवृत्तः। साधूक्तं केनचित्–

इसके पश्चात् खुर्पी (भूमि खोदने का हथियार) लेकर उस संन्यासी ने मेरा बिल खोदकर बहुत दिनों से इक्ट्ठा किया हुआ मेरा धन ले लिया। तब से प्रति दिन अपनी शक्ति से हीन (दुर्बल) होता हुआ तथा मानसिक उत्साह से रहित होकर अपने लिये भोजन उपार्जन करने में भी मैं असमर्थ हो गया और कष्ट से धीरे–धीरे चलता हुआ चूडाकर्ण नाम के संन्यासी द्वारा देखा गया। तदनन्तर उसने कहा–'अरे वही यह चूहा है जो धनके बलसे कल ऊँचे–ऊँचे उछलता था आज धनाभाव के कारण चलने में भी असमर्थ हो गया।' किसी ने ठीक ही कहा है कि–

अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः।
क्रियाः सर्वाः विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा।।६७।।

प्रसंगः– धनहीनस्य सर्वकर्मनाशः भवतीति निर्दिशति–

अन्वयः– अर्थेन तु विहीनस्य अल्पमेधसः पुरुषस्य सर्वाः क्रियाः ग्रीष्मे कुसरितः यथा विनश्यन्ति।।६७।।

व्याख्या– तु, अर्थेन=धनेन विहीनस्य=रहितस्य, अल्पा मेधा यस्य स तस्य अल्पमेधसः=बुद्धिहीनस्य पुरुषस्य सर्वाः क्रियाः तथैव नष्टाः भवन्ति यथा ग्रीष्मे=ग्रीष्मकाले कुसरितः=छुद्रनद्यः विनश्यन्ति=नश्यन्ति।।६७।।

भाषा– धनहीन, अल्पबुद्धिवाले पुरुष के सभी कार्य वैसे ही नष्ट हो जाते है जैसे–ग्रीष्मऋतु में सूख जाने वाली छोटी–छोटी नदियाँ नष्ट हो जाती हैं।।६७।।

अपरञ्च– यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवः।
यस्यार्थः सः पुमाँल्लोके यस्यार्थः स हि पण्डितः।।६८।।

प्रसंगः– धनस्य सर्वार्थसाधकतां निरूपयति–

अन्वयः– लोके यस्य अर्थाः तस्य मित्राणि, यस्य अर्थाः तस्य बान्धवाः यस्य अर्थः सः पुमान्, यस्य अर्थः स हि पण्डितः।।६८।।

व्याख्या— लोके यस्य=यस्य निकटे अर्थाः तस्य एव मित्राणि = सुहृदः, यस्य अर्थाः तस्य एव बान्धवाः = मित्रादयः जायन्ते, लोके यस्य निकटे अर्थः, स एव पुमान् = पुरुषः, इति गण्यते इत्यर्थः। किमन्यत् यस्य अर्थः स एव मूर्खः सन्नपि पण्डितो भवतीति भावः।।६८।।

भाषा— और भी—संसार में जिसके पास धन है उसी के मित्र हुआ करते हैं, उसी के बान्धव (रिश्तेदार) हुआ करते हैं और लोक में भी वही पुरुष तथा पण्डित कहा जाता है जिसके पास धन रहता है।।६८।।

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम, सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव, त्वन्यः क्षणेन भवतीतिविचित्रमेतत्।।६९।।

प्रसंगः— अर्थं विना सर्वं व्यर्थं भवतीति निरूपयति—

अन्वयः— अविकलानि तानि एव इन्द्रियाणि, तदेव नाम, सा एव अप्रतिहता बुद्धिः, तदेव वचनम्, स एव पुरुषः अर्थोष्मणा विरहितः क्षणेन तु अन्यः भवतीति एतद्विचित्रम्।।६९।।

व्याख्या— यानीन्द्रियाणि पूर्वं सधनावस्थायामासन् तानि एव इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि अविकलानि=दोषरहितानि, साम्प्रंत निर्धनावस्थयामपि वर्तन्ते, यन्नाम=यदभिधानं सम्पत्समये आसीत् तदेव नाम इदानीं विपत्समयेऽपि वर्तते, अप्रतिहता=अकुण्ठिता, तदानीन्तनी एव बुद्धिः इदानीमपि वर्तते, तदेव=तथाविध ामेव वचनं परन्तु एवम्भूतः स एव पुरुषः यदा अर्थोष्मणा=धनोष्मणा विरहितः परित्यक्तः भवति तदा सः क्षणेन=क्षणमात्रादेव, अन्य इव=पृथग्जन इव तिरस्कार्यो भवति। एतत्=इदं विचित्रं=महादाश्चर्यम्।।६९।।

भाषा—आज भी वे ही इन्द्रियाँ अच्छी अवस्था में हैं जो पहले सधन अवस्था में थीं, सम्पन्न अवस्था में जो नाम था वही आज विपदस्था में हैं, जो दूरदर्शिनी बुद्धि पहले थी वही आज भी है और जो बात पहले थी आज भी वही बात है, परन्तु धन की गर्मी निकल जाने पर पुरुष की दशा क्षणमात्र में ही बदल जाती है, और वह साधारण जन की तरह हो जाता है, यह कैसा आश्चर्य है।।६९।।

अपिच **दारिद्रयाध्रियमेति, ह्रीपरिगतः, सत्वात्परिभ्रश्यते,**
निःसत्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्धया परित्यज्यते,
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो! निधनता सर्वापदामास्पदम्।।७०।।

प्रसंगः— निधनतायाः सर्वापत्कारणतां वर्णयति—

अन्वयः— दारिद्रयात् ह्रियं एति, ह्रीपरिगतः सत्वात् परिभ्रश्यते, निःसत्वः परिभूयते, परिभवात् निर्वेदम् आपद्यते, निर्विण्णः शुचम् एति, शोकपिहितः बुद्धया परित्यज्यते, निर्बुद्धिः क्षयम् एति। अहो! निधनता सर्वादाम् आस्पदम्।।७०।।

व्याख्या—जनः दारिद्रयात् = धनाभावत्वात् ह्रियं = लज्जां एति = प्राप्नोति, ह्रीपरिगतः = लज्जितः, परिभूयते = पराभवं प्राप्नोति, परिभवात् = अनादरात् निर्वेदं = ग्लानिम्, आपद्यते = प्राप्नोति, निर्विण्णः = खिन्नः, शुचं = शोकम्, एति= प्राप्नोति, शोकपिहितः = शोकाकुलः बुद्धया परित्यज्यते = तस्य बुद्धिर्नश्यति, ततः, निर्बुद्धिः = बुद्धिहीनः पुरुषः क्षयं = नाशम्, एति = प्राप्नोति, अहो! निधनता = धनाभावता, सर्वापदां = सर्वविधविपदाम्, आस्पदं = स्थानं वर्तते।।७०।।

भाषा— दरिद्रता से मनुष्य लज्जित होता है और लज्जित मनुष्य निस्तेज हो जाता है, तेजहीन हो जाने के कारण उसका निरादर होने लगता है, अनादर से खेद होता है, खिन्न मनुष्य शोकाकुल हो जाता है, शोकाकुल मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट हो जाने पर मनुष्य का नाश हो जाता है। अहो। आश्चर्य है कि दरिद्रता ही सब आपदाओं का एकमात्र स्थान है।

एतत्सर्वमाकर्ण्य रहसि मयालोचितम्— यन्ममात्रावस्थानम —युक्तमिदानीम्। यच्चान्यस्मा एतद्वृत्तान्तकथनं तदप्यनुचितम्।' यतः—

भाषा— यह सब सुनकर मैने एकान्त मे विचार किया—'अब मेरा यहाँ रहना उचित नही है' और दूसरों से भी अपना यह वृतान्त कहना ठीक नहीं है। क्योकि—

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्।।७१।।

प्रसंगः— मतिमता किं न प्रकाश्यमिति उत्तरयति—

अन्वयः— मतिमान् अर्थनाशं, मनस्तापं, गृहे दुश्चरितानि च, वञ्चनं च, अपमानं च न प्रकाश्येत्।।७१।।

व्याख्या— मतिमान् = बुद्धिमान्, अर्थस्य = धनस्य, नाशः = क्षयः तं, मनसः = अन्तःकरणस्य तापं = दुःखं तं मनस्तापम् गृहे यानि दुश्चरितानि = व्यभिचारादिदुराचरणानि तानि, वंचनं = दुष्टैः प्रतारणम्, अपमांन = तिरस्कारं च न प्रकाश्येत्।।७१।।

भाषा—बुद्धिमान् मनुष्य अपने धन का नाश, हृदय का दुःख, घर में होनेवाला दुराचार, किसी के द्वारा ठगा जाना और किसी के द्वारा तिरस्कार या अपमान किया जाना, इन्हें प्रकाशित न करें।।७१।।

यच्चात्रैव यांचया जीवनं तत्त्वतीव गर्हितम्। उक्तं च—

भाषा—और जो यहाँ रहकर भिक्षावृत्ति से जीवन निर्वाह करना हैं तो यह बहुत ही निन्दित है। कहा भी है कि—

सेवेव मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम्।
हरिहरकथेव दुरितं गुणशतमप्यर्थिता हरति।।७२।।

प्रसंग :— याचना किं हरतीति सोदाहरणं प्रतिपादयति।

अन्वय :— सेवा अखिलं मानम् इव, ज्योत्स्ना तम इव, जरा लावण्यम् इव, हरिहरकथा दुरितम् इव, अर्थिता गुणशतमपि हरति।।७२।।

व्याख्या— सेवा अखिलं = संपूर्ण मानम् इव = यथा हरति, ज्योत्स्ना = चन्द्रिका तमः = अन्धकारम् इव = यथा हरति, जरा = वृद्धत्वं लावण्यं = सौन्दर्यम्, इव = यथा हरति, हरिहरकथा = भागवतकथा, इव = यथा, दुरितं = पापं हरति तथैव अर्थिता यांचना गुणानां शतम् अपि हरति।।७२।।

भाषा— जैसे सेवा से गौरव, चांदनी से अधंकार, बुढ़ापे से सौन्दर्य और भागवत् की कथा से पाप नष्ट होता है उसी प्रकार याचना करने से अनन्त गुण भी नष्ट हो जाते हैं।

इति विमृश्य तत्किमहं परपिण्डेनात्मानां पोषयामि। कष्टं भोः कष्टम् एतदपि द्वितीयं मृत्युद्वारम्।यतः—

भाषा— ऐसा सोचकर तो क्या मैं दूसरे के दिये हुये टुकड़े से अपने शरीर का पोषण करूं? अहो। बड़ा कष्ट है यह तो मृत्यु का दूसरा द्वार है। क्योंकि—

रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः।।७३।।

प्रसंग :— पराधीनदरिद्रस्य निन्दामुपस्थापयति—

अन्वयः— रोगी, चिरप्रवासी, परान्नभोजी, परावसथशायी, यत् जीवति तत् मरणं, यत् मरणम् अस्य सः विश्रामः।।७३।।

व्याख्या — रोगी, चिरं प्रवसति = चिराय दूरदेशे निवसति इति चिरप्रवासी बहुकालपर्यंन्त तथाभूतः चिरकालविदेशवासी इत्यर्थः। परान्नं भुङ्क्ते इति परान्नभोजी, परस्य आवसथः तस्मिन् शेते इति परावसथशायी = परगृहशयनशीलः

यत् जीवति = यावत् कालं जीवति तन्मरणं = तावत्कालं तस्य मरणं मृत्युरेवेति भावः। यत् = यच्च मरणम् अस्य सः विश्रामः = शान्तिकालः। ।७३।।

भाषा – रोगी, सदा परदेश रहनेवाला, परान्नभोजी और दूसरे के घर सोनेवाले पुरुरूष का जीवन ही मृत्युतुल्य है और जो वास्तविक मरता हैं वहीं उसका विश्राम है।

इत्यालोच्यातिलोभात्पुनरपि तदीयमन्नं ग्रहीतुमाग्रहमकरवम्। अन्नलुब्धो ह्यसन्तुष्टो नूनमात्मद्रोही भवति। तथा चोक्तम्–

भाषा– ऐसा विचार कर भी पुनः मैंने लोभ के कारण उस सन्यासी का अन्न खाने का हठ किया। अन्न का लोभी और असन्तुष्ट निश्चय ही आत्मद्रोही होता है। जैसे–

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम्।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः। ।७४।।

प्रसंगः– लोभस्य सर्वदुःखकारणतां निर्धारयति।

अन्वयः– लोभेन बुद्धिः चलति, लोभः तृषां जनयते, तृषार्तः मानवः परत्र इह च दुःखम् आप्नोति। ।७४।।

व्याख्या – लोभेन बुद्धिः चलति = सत्यमार्गात्परिभ्रश्यति, लोभः तृषाम् = अभीष्टानभीष्टवस्तुविषयकपिपासां, जनयते = उत्पादयति, तृषार्तः = पिपासापीडितः, इह = इह लोके, परत्र = परलोके च दुःखं = क्लेशम्, आप्नोति = प्राप्नोति, अनुभवतीति भावः। ।७४।।

भाषा – लोभ से बुद्धि सत्य मार्ग को छोड़ देती है, लोभ से तृष्णा उत्पन्न होती है, तथा तृष्णा में पीड़ित मनुष्य इस लोक और परलोक में दुःख पाता है। ।७४।।

ततोऽहं मन्दं मन्दमुपसर्पंस्तेन चूड़ाकर्णेन जर्जरवंशखण्डेन ताडितश्चाचिन्तयम्–'यद् येन मया तादृशं सुखमनुभूतं तेनैवेदृगसह्यं दुःखमनुभूयते।' उचितमेवोक्तम्–

भाषा – इसके पश्चात जव मैं धीरे–धीरे जा रहा था तो उसी वीणाकर्ण नाम के सन्यासी ने एक पुराने बांस के टुकड़े से मुझे मारा, तब मैंने सोचा–'जिस मैंने पहले उस प्रकार के सुख का अनुभव किया वहीं मैं आज इस प्रकार के असह्य दुःख का अनुभव कर रहा हूँ। ठीक ही कहा है–

क्षणेनाग्नौ क्षणेनाप्सु लोहसन्दशको यथा।
सुखदुःखात्मकं तद्वद् द्वन्द्वचक्रं शरीरिणाम्।।७५।।

प्रसंग :— सर्वेषां शरीरिणां सुखदुःखात्मकं जीवनमिति निर्दिशति।

अन्वयः— लोहसन्दशकः यथा क्षणेन अग्नौ, क्षणेन अप्सु च (निधीयते) तद्वदेव शरीरिणां सुखदुःखात्मकम् द्वन्द्वचक्रं वर्तत इति शेषः।।७५।।

व्याख्या — लोहसन्दशकः = ज्वलदंगारदिनिष्कासनयन्त्रम् यथा = येन प्रकारेण, क्षणेन = क्षणमात्रार्थमित्यर्थः अग्नौ = वह्नौ, क्षणेन = क्षणमात्रार्थेचअप्सु = जलेषु निधीयते, तद्वदेव = तथैव शरीरिणां = देहिनां, सुखदुःखात्मकं = सुखदुःखस्वरूपं द्वन्द्वचक्रं वर्तत इति शेषः।।७५।।

भाषा — जैसे लोहे की मोटी सड़सी को क्षण में आग में और अगले क्षण में पानी में डुबाया जाता है, उसी तरह सुख दुःख तो जोड़ें का चक्र है जो प्राणियों को कभी सुख का तो कभी दुःख का अनुभव कराया करता है।।७५।।

असेवितेश्वरद्वारमदृष्टविरहव्यथम्।
अनुक्तक्लीबवचनं धन्यं कस्यापि जीवनम्।।७६।।

प्रसंगः— धन्यजीवनस्य स्वरूपं प्रदर्शयति।

अन्वयः— असेवितेश्वरद्वारम् अदृष्टविरहव्यथम् अनुक्तक्लीबवचनं कस्यापि जीवनं धन्यम्।।७६।।

व्याख्या— न सेवितम् ईश्वरस्य द्वारं येन तदसेवितेश्वरद्वारं = अनवलोकितधनिकद्वारम्, अदृष्टा विरहव्यथा येन तत्तथाभूतम् अदृष्टविरहव्यथम् = अननुभूतविरहदुःखं, न उक्तं क्लीबवचनं येन तत् अनुक्तक्लीबवचनम् = अनुच्चारितदीनवचनं एवम्भूतं कस्याऽपि जनस्य जीवनं धन्यम्।।७६।।

भाषा— जिसने किसी धनिक का द्वार नहीं देखा, जिसने अपने प्रियजनों का वियोग दुःख नहीं देखा और जिसने दीन होकर कभी किसी को कुछ कहा नहीं ऐसे किसी विशिष्ट पुरूष का जीवन धन्य है।।७६।।

इत्यवधार्य संसारयात्रायां व्यापृतो मित्रेणानेन संगतो विधिवशाद् भूतदयादिमुख्य धर्ममनुष्ठितो भवतो दर्शनं लब्धवान्। यतोहि—

भाषा — ऐसा निश्चय कर संसार कार्य में इस मित्र के साथ लगा हुआ, भाग्यवश जीवदयादिरूप मुख्य धर्मकार्य करने वाले आपका दर्शन पा सका। कहा भी है कि—

को धर्मो? भूतदया, किं गृहिणः प्रियहिताय? दारगुणाः।
कः स्नेहः? सद्भावः, किं पाण्डित्यं ? परिच्छेदः।।७७।।

प्रसंगः– धर्मादीनां लक्षणानि निर्दिशति–

अन्वयः– धर्मः कः? भूतदया, गृहिणः प्रियहिताय किम्? दारगुणाः, स्नेहः कः? सद्भाव, पाण्डित्यं किं? परिच्छेदः।।७७।।

व्याख्या – धर्मः कः? भूतंदया = प्राणिमात्रं प्रति दयाभावः, गृहिणां = गृहस्थस्य, प्रियहिताय = प्रियाय हिताय च किम्? दारगुणाः = भार्यागुणाः, स्नेहः कः? सद्भावः, किं पाण्डित्यम्? परिच्छेदः = सदसद्विवेकः।।७७।।

भाषा– संसार में धर्म क्या है?–प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखना, गृहस्थ के लिए प्रिय और हितकर क्या है? स्त्री के गुण, स्नेह क्या है? सद्भाव रखना और पाण्डित्य क्या है? कर्तव्याकर्तव्य को जानना।।७७।।

मन्थरः प्राह–'सखे हिरण्यक। अस्मिन् पद्ये द्वितीयपादे यत् त्वं 'गृहिणः प्रियहिताय दारगुणा इत्यात्थ', तत् कथय गृहस्थाश्रमे पत्युः हिताय के दारगुणा अपेक्षिता इति। हिरण्यकोऽवदत् – 'भो मित्र मन्थर! अत्रास्ति पुरातनमेकमैतिह्यम्, तदहं कथयामि सावधानं श्रूयताम्–

भाषा – मन्थर ने कहा कि – 'मित्र हिरण्यक। ऊपर के पद्य के द्वितीय चरण में 'गृहस्थ के प्रिय और हित के लिए दारगुण हैं' यह जो आपने कहा, तो बतायें गृहस्थाश्रम में पति के हित के लिए कौन से दारगुण अपेक्षित हैं। हिरण्यक ने कहा कि–'हे मित्र मन्थर। इस सम्बन्ध में एक पुरातन इतिहास है, उसको मैं कहता हूँ सावधान होकर सुनो–

शक्तिकुमार गुणवती भार्या कथा

अस्ति द्रविडदेशेषु कांची नाम नगरी। तस्यां शक्तिकुमारो नाम कश्चिन्महाधनो वणिक्सुतो गुणवतीं भार्यां परिणेतुमितस्ततो ज्यौतिषिकच्छद्मना परिभ्रमन् कामपि कन्यकां परीक्ष्य सुलक्षणेयमिति निश्चित्य शालिप्रस्थमेकं तस्यै दत्वा अब्रवीत्–'भद्रे, शक्नोसि किमनेन शालिप्रस्थेन गुणवदन्नमस्मानभ्यवहारयितुम्?' इति। सा तु सलज्जस्मितं वृद्धदासीहस्तेन तान् शालीनादाय तं वाणिक्पुत्रम् आलिन्दोद्देशे कृतपादशौचंम् उपावेशयत्। ततश्च तान् गन्धशालीन् मुसलने उलूखले

सङ्क्षुद्य, आतपे मुहुर्मुहुः परिवर्तयन्ती विशोष्य, शूर्पेण मृदुमृदु परिष्कुर्वती तुषेभ्यस्तण्डुलान् पृथक्, चकार। धात्रींच जगाद—मातः। भूषणमृजाक्रियाक्षमैः एभिस्तुषैः स्वर्णकाराणां प्रयोजनं सिद्धयाति तत्तेभ्य इमान्दत्वा ततो लब्धाभिः काकिणीभिः स्थिरतराणि अनत्यार्द्राणि नातिशुष्काणि इन्धनानि, मितम्पचां मृदः स्थालीम्, उभे शरावे चाहर इति' दास्या सत्वरं तथा कृते सति सा दीपशलाकया अग्निं प्रज्ज्वाल्य मृदः स्थालीमग्नौ प्रताप्य तत्र जलं प्रक्षिप्य चुल्या उपरि अध्यतिष्ठिपत्।

ततः तांस्तण्डुलान् असकृत् प्रक्षाल्य क्वथितपंचगुणे जले दत्तचुल्लिपूजा प्राक्षिपात्। शिथिलावयेषु प्रस्फुरत्सु तण्डुलेषु अनलं संक्षिप्य दारुपिधानेन उपहितमुखायाः स्थाल्या अन्नमण्डमगालयत्। दर्व्याऽवघट्य, मात्रया परिवर्त्य समपक्वेषु भक्तपुलाकेषु तां स्थालीम् अधोमुखीं पात्रे स्थापयामास। ज्वलितेन्धनानि अम्भसा समभ्युक्ष्य कृष्णांगवलीकृत्य तदर्थिभ्यो विक्रेतुं प्राहिणोत्। तेभ्यो लब्धैः पणैः शाकं, घृतं, दधि, तैलम्, आमलकं, चिंचाफलं, सैन्धवं च यथालाभमानय्य द्वित्रान् उपदंशान् सम्पाद्य स्नानार्थं तस्मै तैलामलकं धात्रीहस्तेन प्रेषयामास। कृतस्नानविधये समागताय तस्मै मण्डनिर्मिताम् एलालवंगादिचूर्णवासिताम् पेयमिव प्रथमं धात्रीहस्तेन समुपाजहार। स च पीत्वा अपनीताध्वश्रमः प्रहृष्टः समुपजातबुभुक्षाऽजनि।

शूचिभूमौ महानसे पीठासने समुपविष्टाय तस्मै पुरतो निहिताय हस्तमात्रोच्छ्रिताया द्वारुनिर्मितलधुचतुष्क्या उपरि प्रतिष्ठापिते विस्तीर्णे कांस्यपात्रे शाल्योदनस्य दर्वीद्वयं दत्वा सघृतं सूपं सोपदंशं पर्यर्यवेषयत्। असौ च आपोशानं विधाय 'ब्रह्मार्पणम्' इत्यादिमन्त्रैः ब्रह्मार्पणपूर्वकं पंचकवली कृत्वा वाग्यतो भुंजानः साधु दन्तैश्चर्वयन्नल्पीयसैवान्नेन तृप्तो यथेच्छं पानीयं पीत्वा कृताचमनः प्रक्षालितमुखहस्तपादः कृतप्रस्त्रावो मुखशुध्यर्थम् एलालवंगादिगर्भताम्बूलं चर्वयन् शुक्लपरिच्छं तल्पं भेजे। तत्र परिवर्तितदक्षिणावामादिकुक्षिभागः क्षणं विश्रम्योत्थाय परिच्छदं परिधायोपविष्टः।

इत्येवम् तयोपचारितः सोऽतिपरितुष्टस्तां सुलक्षणां सर्वगुणसम्पन्नेति विधिवत् परिणीय गृहं निनाय। सा च पतिं देवतामिव परिचरन्ती गृहकार्याणि चान्वहं साधयन्ती परिजनं, गुरुजनं, भातृजनं, ननान्दृगणं च समतोषयत्। तद्गुणवशीकृतश्च भर्ता सर्वमेव स्वकुटुम्बं तदायत्तं विधाय तदधीनधनजीवस्त्रिवर्गं बुभोज। अत एवाहं ब्रवीमि—'गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः' इति। कूर्मश्च तां कथां समर्थ्यमानः

प्रसन्नान्तरात्माऽभ्यधात्—मित्र! मयापि श्रुतम्—

भाषा — द्रविड़ देश में कांची नाम की एक नगरी है। उसमें शक्तिकुमार नाम के किसी धनी वणिक् पुत्र ने गुणवती स्त्री से विवाह करने के लिए नकली ज्योतिषी बन कर इधर—उधर घूमते हुए एक कन्या की परीक्षा ली और उसे अच्छे लक्षणों वाली समझकर एक सेर चावल दिया और कहा कि— 'हे कल्याणिनि! क्या आप इस चावल से मुझे भोजन कराने के लिए जायकेदार, सुस्वादु भोजन बना सकती हो? लजाती हुई उस कन्या ने हंसते हुये दासी के हाथ से चावलो को ले लिया और उस वणिक् पुत्र के पाव धुलवाकर दरवाजे के बाहर चबूतरे पर बैठवा दिया? उसके बाद उन सुगन्धित चावलों को ओखली में छटवाकर बार—बार धूप में उलट फेर के द्वारा सुखाकर सूप से पछोरती हुई उस कन्या ने चावल और भूसी को अलग कर दिया और अपनी धाय को बोली—'हे मां! गहनों को चमकाने के लिए वह भूसी सोनारों के बड़े काम की है इसलिये उनके हाथ इस भूसी को बेचकर जो पैसा मिले उनसे न बहुत सूखी और न बहुत गीली ठोस लकड़ी, पकाने लायक मिट्टी की बटलोई, और दो कसोरे लेती आओ।' उसके कथानानुसार दासी के सब समान ले आने पर उस कन्या ने दियासलाई से आग सुलगाई एवं उस पर थाली को सेंका और उसमें पानी भरकर चूल्हे पर चढा दिया।

चावलों को बार—बार धोकर—जब पानी का पांचवां हिस्सा जल गया तब चार दाना चूल्हे में डालकर उसकी पूजा की एवं चावल पकाने के लिए पानी में डाल दिये। चावल जब खौलने लगे और उसके अवयव ढीले मालूम होने लगे तब आग को कम कर लकड़ी के ढक्कन से थाली के मुंह को बन्दकर उसका मांड़ छान लिया। करछुल से चलाकर सराटे से चावलों को नीचे ऊपर कर ज़ब सब चावल पक गये तब एक पात्र में उलटा मुंहकर उस थाली को रख दिया। जलती लकड़ी को पानी से बुझाकर कोयलों को बेचने के लिए उसके खरीदने वालों के पास भेज दिया। कोयले के पैसों से तरकारी, धी, दही, तेल, आंवला इमली, सेंधा नमक आदि सब समान आवश्यकता के अनुसार मंगवा लिया और दो तीन तरह की चटनी बना ली। अनन्तर वणिकपुत्र के स्नान के लिये तेल और आंवला धाय के हाथ से भेजवा दिया; वणिकपुत्र के स्नान कर लेने पर पीने के लिए लौंग इलायची के चूर्ण से सुगन्धित मांड की लस्सी को धाय के हाथ से भेज दिया जायकेदार उस लस्सी को पीकर वणिकपुत्र की थकावट दूर हुई

अत्यन्त प्रसन्न हुआ और फिर भूख ने भी जोर किया।

उसके बाद पवित्र भूमि पाकशाला में पीढे पर बैठे हुये वणिकपुत्र के सामने रखी हुई एक हाथ ऊँची लकड़ी की चौकी पर कांसे की बड़ी थाली में दो करछुल चावल, घी, सूप (द्रविड़ देश का जायकेदार पेय पदार्थ) और चटनी आदि सामान परोसा। वणिकपुत्र् ने भी आचमन कर 'ब्रह्मार्पण ब्रह्महविः' इत्यादि मंत्रो से 'ब्रह्मार्पण' करते हुये प्राणायाम, स्वाहा आदि मन्त्रपूर्वक पांच ग्रास लेकर मौन होकर अच्छी तरह भोजन किया और शोड़े से ही अन्नादि से तृप्त हुआ। इच्छानुसार पानी पीकर आचमन लिया। हाथ पैर धोने के बाद लघुशंका कर मुखशुद्धि के लिए लौंग इलायची आदि सुगन्धित मसालेदार पान खाकर सफेद चादर बिछे हुये पलंग पर आराम किया। दाहिनी--बाईं करवट लेकर थोड़ी देर विश्राम कर कपडे पहनकर बैठा।

इस प्रकार उस कन्या के द्वारा सत्कार किया गया वह वणिकपुत्र् बहुत प्रसन्न हुआ और अच्छे लक्षणोंवाली, सर्वगुणसम्पन्न उस कन्या को यथाविधि विवाह कर अपने घर ले गया। उसने भी देवता की तरह पति की सेवा की और घर के सब काम--काज प्रतिदिन करती हुई अपनी दास--दासी, सास--ससुर, देवर--देवरानी, जेठ--जेठानी, नन्द--नन्दोई आदि को सन्तुष्ट किया। उसके गुणा से वशीकृत उस वणिकपुत्र् ने अपना सारा परिवार उसके अधीन कर और स्वयं भी अपना धन--जीवन उसको सौंपकर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) को भोगने लगा। इसलिये मैं कहता हूँ कि स्त्रियों के गुण पति के प्रिय और हितकर हुआ करते हैं। कछुआ भी इस कथा का समर्थन करता हुआ अति प्रसन्न होकर बोला --'मित्र! मैंने भी सुना है कि--

दाम्पत्यमनुकूलं चेत् किं स्वर्गस्य प्रयोजनम्।
दाम्पत्यं प्रतिकूलं चेन्नरकं किं गृहमेव तत्।।७८।।

प्रसंग :-- दाम्पत्यस्य महत्वं प्रतिपादयति--

अन्वयः-- दाम्पत्यम् अनुकुलम् चेत् स्वर्गस्य किं प्रयोजनम्, दाम्पत्यम् प्रतिकूलं चेत् तदा तत् एव गृहं नरकं वर्तते इति शेषः।।७८।।

व्याख्या -- चेत् = यदि, दम्पत्योर्भावः दाम्पत्यम् = जायापत्यम् अनुकूलम् = उभयोर्जायापत्योरैकात्म्यं तदा स्वर्गस्य= अनिवर्चनीयमसुखावाप्तिसाधनभूतस्य स्वर्गलोकस्य, किम्प्रयोजनं= का आवश्यकता, किमर्थं तदर्थंमत्यर्थं प्रयत्न कर्तव्य

इत्यर्थः। तथैव चेत्= यदि दाम्पत्यम् प्रतिकूलम्= सर्वांशे परस्परं विरुद्धं तदा तद एव गृहं नरकं= मर्मोपधातिदुःसहदुःखजनकमित्यर्थः वर्तते।। ७८।।

भाषा – पति और पत्नी दोनों के विचार एक समान हों, पृथक–पृथक रहते हुये भी दूध और पानी की तरह एक रूप हो गयें हो तो स्वर्ग प्राप्ति का कोई प्रयोजन नहीं है। अनुकूल दाम्पत्यवाला घर ही स्वर्ग है और जिस घर में दम्पती (पति–पत्नी) परस्पर विरुद्ध विचारवाले, हों तो वह घर ही नरक है।।७८।।

हिरण्यकः पुनराह–'सखे मन्थर। पाण्डित्यमपि परिच्छेदेनैव परिचीयते।' तथा च–

भाषा– हिरण्यक फिर बोला –'मित्र मन्थर! विद्वता भी सूझबूझ से ही पहचानी जाती है।' कहा भी है कि–

परिच्छेदो हि पाण्डित्यं येन ध्वस्ता विपत्तयः।
अपरिच्छेदकर्तृणां विपदः स्युः पदे पदे।।७६।।

प्रसंगः– परिच्छेद एव पाण्डित्यमिति साधयति–

अन्वयः– हि परिच्छेदः पाण्डित्यं (भवति) येन विपतयः ध्वस्ताः, अपरिच्छेदकर्तृणां पदे–पदे विपदः स्युः।।७६।।

व्याख्या– हि परिच्छेदः कर्तव्याकर्तव्यविचार एव पाण्डित्यम् भवति येन विपत्तयः = आपदः ध्वस्ता= विनष्टाः भवन्तीति शेषः। अपरिच्छेदकतृणां = अविचार्यैव कर्मकुर्वतां पदे पदे= प्रतिपदं विपदः= विपत्तयः स्युः।।७६।।

भाषा– कर्तव्याकर्तव्य का जानना ही पाण्डित्य है जिससे विपत्तिया नष्ट होतीं हैं कर्तव्याकर्तव्य का विचार न करनेवालों को ही पग–पग पर आपत्तियाँ हुआ करती हैं अर्थात् बराबर आती ही रहती है।।७६।।

तथा च– **त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।**
ग्रामं जनपदस्यार्थे स्वात्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।८०।।

प्रसंग :– आत्मोपकाराय सर्वस्वत्यागस्यौचित्यं कथयति।

अन्वयः– कुलस्य अर्थे एकं त्यजेत्, ग्रामस्य अर्थे कुलं त्यजेत्, जनपदस्य अर्थे ग्रामं (त्यजेत्) आत्मार्थें पृथिवीं त्यजेत।।८०।।

व्याख्या – कुलस्य अर्थे = कुलमर्यादारक्षणायेत्यर्थः एकं = कुलांगारम् एंक जनं त्यजेत्, ग्रामस्य अर्थे = ग्रामजनोपकाराय कुलं = वंश पुत्रपौत्रादिकमित्यर्थः त्यजेत् जनपदस्य = देशस्य अर्थे ग्रामं त्यजेत् एवं स्वात्मार्थे = निजहितरक्षा पृथिवीं = सकलधरां धन–धान्य पुत्र–पौत्रादिकं सर्वमपीत्यर्थ

त्यजेत्।।८०।।

भाषा – अपने वंश की मर्यादा रक्षण के लिए अपने किसी दुष्ट आत्मीय को भी छोड़ना पड़े तों छोड़ दें, ग्रामहित के लिए अपना कुल भी छोड़ दें, देश के हित के लिये ग्राम को छोड़ दें और अपने हित के लिए सब कुछ छोड़ देना चाहिये।।८०।।

इत्यालोच्याहमत्र विदेशे स्वयं स्वकरपादाद्युपयोगेन स्वजीवनयात्रां सम्पादयितुं समुपागतः। यतोहि–

भाषा – ऐसा विचार कर इस परदेश में अपने शारीरिक परिश्रम मजदूरी द्वारा जीवन निवार्ह करने के लिए मैं यहां आया हूँ। क्योंकि–

वरं विदेशे परसेवयाऽनिशं द्रव्यार्जनं पादकरोपयोगतः।
वरं निवासः श्रमजीविभिः सदा न बन्धुमाध्ये धनहीनजीवनम्।।८१।।

प्रसंग :– कि वरं किञ्चावरमिति उत्तरयति

अन्वयः– विदेशे पादकरोपयोगतः परसेवया अनिशं द्रव्यापार्जनं वरम् श्रमजीविभिः सह निवासः वरम् किन्तु बन्धुमध्ये धनहीनजीवनं न वरम्।।८१।।

व्याख्या– विदेशे = परदेशे, पादकरोपयोगतः = हस्तपादोपयोगात् परसेवया = बन्धुजनातिरिक्तजनसेवया, अनिशं = निरन्तरं द्रव्यार्जनं, वरं = श्रेष्ठम् श्रमजीविभिः = शरीरश्रमेण जीविकां कुर्वद्भिः सह सदा निवासः = सहवासः वरम् किन्तु बन्धुमध्ये = स्वसम्बन्धिमध्ये धनहीनजीवनं = धनविरहितजीवनं न वरं = न श्रेष्ठम्।।८१।।

भाषा – विदेश मैं शारीरिक श्रम (मजदूरी) द्वारा, दूसरों की सेवाकर निरन्तर अर्थोंपार्जन करना अच्छा है, मजदूरों के साथ एकत्र रहना अच्छा है। किन्तु अपनेसगे सम्बन्धियों में धनहीन होकर रहना अच्छा नहीं है।।८१।।

अधुना च पुण्यपरम्परया भवदाश्रयः स्वर्ग एव मित्रस्नेहानुवृत्यानुगृहीतेन मया प्राप्तः। यतः–

भाषा – इस समय पुण्य की परम्परा से इस मित्र (कौवे) के स्नेह के आधिक्य से अनुगृहीत होकर मैंने स्वर्ग सदृश ही आपका आश्रय पा लिया क्योंकि–

संसारविषवृक्षस्य द्वे एव रसवत्फले।
काव्यामृतरसास्वादः संगमः सज्जनैः सह।।८२।।

प्रसंगः– काव्यामृतं सत्सग्ङतिं च स्तौति–

अन्वयः – संसारविषवृक्षस्य काव्यामृतरसास्वादः सज्जनैः सह संगम इति द्वे एव रसवत्फले।।८२।।

व्याख्या– संसार एव विषस्य वृक्षः तस्य द्वे एव रसाः सन्ति अनयोः इति रसवती च ते फले रसवत्फले स्तः, एकन्तु काव्यामृतस्य, रसास्वादः = आस्वादनम् अपरन्तु सज्जनैः = सत्पुरूषैः सह संगमः।।८२।।

भाषा– संसाररूपी विषवृक्ष के दो ही फल रसवाले हैं। एक तो काव्यरूपी अमृत का रसास्वाद और दूसरा सज्जन पुरूषों की मैत्री।।८२।।

मन्थर उवाचः– युष्माभिरतिसंचयः कृतस्तस्यायं दोषः। श्रृणु–

भाषा – 'आपने अति संग्रह किया उसका यह दोंष है। सुनों–

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एवं हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्।।८३।।

प्रसंगः– उपार्जितावित्तस्य सदुपयोगं शिक्षयति–

अन्वयः– तडागोदरसंस्थानाम् अम्भसां परीवाह इव उपर्जितानां वित्तानां हि त्याग एव रक्षणम्।।८३।।

व्याख्या– तडोगोदरसंस्थानां = सरोवरमध्यस्थितानां, अम्भसां = जलानां परीवाहः = निष्कासनमिव उपार्जितानां = संगृहीतानां वित्तानां, त्यागः = दानम् एव रक्षणम् भवतीति शेषः।।८३।।

भाषा– पैदा किये हुये धन का दान करना ही उसकी रक्षा है जैसे सरोवर के माप से अधिक पानी को निकाल देने पर ही उसके जल की रक्षा होती है।।८३।।

अपरं च– **दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वित शौर्यम्।**
वित्तं त्यागनियुक्तं दुर्लभमेतच्चतुष्टयं लोके।।८४।।

प्रसंगः– लोके किं किं दुर्लभमिति प्रश्नानुत्तरयति–

अन्वयः– प्रियवाक्यसहितं दानमं, अगर्वं ज्ञानम्, क्षमान्वितं शौर्यम, त्यागनियुक्तं वित्तम्, एतत् लोके चतुष्टयं दुर्लभम्।।८४।।

व्याख्या– प्रियवाचा = मधुरवचनेन सहितं दानम, अगर्वम् = अभिमानरहितं ज्ञानम्, क्षमान्वितं = क्षमासहितं शौर्यं = शूरता, त्यागे = दाने नियुक्तं = प्रयुक्तं वित्तम् एतत् चतुष्टयं लोके दुर्लभं भवति।।८४।।

भाषा– और भी प्रिय वचन सहित दान, अभिमानरहित ज्ञान, क्षमासहित वीरता, दान में लगा धन ये चार संसार में दुर्लभ है।।८४।।

किंच— यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने।
तत्ते वित्तमलं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि।।८५।।

प्रसंग :— कस्मिन् धने नरस्य स्वत्वमिति प्रतिपादयति—

अन्वयः— दिने दिने यद् विशिष्टेभ्यः, ददासि, यच्च अश्नासि, तत् वित्तम् ते (इति) अहं मन्ये, शेषं कस्यापि रक्षसि।।८५।।

व्याख्या — दिने दिने यद् धनं विशिष्टेभ्यः = गुणवद्भ्यः ददासि यच्च धनं दिने दिने, अश्नासि = उपभुंक्षे तत् = तथाभूतं वित्तं ते = तव इति अहम् मन्ये, शेषम् = एतदरिक्तिं धनं, कस्यापि = अन्यस्य त्वं रक्षसि वस्तुतस्तद्धनं तव न वर्तत इति भावः।

भाषा — और भी जो धन तुम किसी योग्य को देते हो और जिसका उपभोग करते हो वह धन तो तुम्हारा है ऐसा मैं समझता हूँ, पर जो धन ऐसा नहीं है वह किसी दूसरे का है, तुम तो उसके केवल रक्षक हो।।८५।।

यातु किमिदानीमतिक्रान्तोपवर्णनेन। यतः—

भाषा — जाने दो, अब इस समय इन बीती बातों के दुहराने से क्या लाभ। क्योंकि—

नाप्राप्यमभिवांछिन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्स्वपि न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः।।८६।

प्रसंगः— धनविषये पण्डितकर्तव्यं निर्दिशति।

अन्वयः— पण्डितबुद्धयः नराः अप्राप्यं न अभिवांछन्ति, नष्टं शोचितुं न इच्छन्ति, आपत्सु अपि न मुह्यन्ति।।८६।।

व्याख्या — पण्डितबुद्धयः = विद्वांसः, नराः अप्राप्यम् = अलभ्यं वस्तु न अभिलषन्ति, नष्टं शोचितुं = शोकं कर्तुमपि न इच्छन्ति, आपत्स्वपि = विपत्स्वपि न मुह्यन्ति = मोहं न गच्छन्ति।।८६।।

भाषा — पण्डित जन अलभ्य वस्तुको चाहते नहीं, नष्ट वस्तु का शोक नहीं करते आपत्ति काल में कर्तव्याकर्तव्यविवेकशून्य नहीं होते।।८६।।

गते शोको न कर्तव्यः भविष्यन्नैव चिन्तयेत्।
वर्त्तमानेन कालेन वर्त्तयन्ति विचक्षणाः।।८७।।

प्रसंगः— चतुरजनकर्तव्यं प्रतिपादयति—

अन्वयः— गते शोकः न कर्तव्यः भविष्यन्नैव चिन्तयेत् विचक्षणाः वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति।।८७।।

व्याख्या– गते = व्यतीते कर्मणि शोकः = चिन्ता न कर्तव्यः, भविष्यत् = आगिमिकृत्यं, नैव चिन्तयेत् = नैव विचारयेत्। विचक्षणाः = पण्डिताः, वर्तमानेन कालेन = साम्प्रतिकसमयेन वर्तयन्ति = व्यवहरन्ति। अर्थात् अतीतं विस्मृत्य तात्कलिकी विचारणा कर्तव्या इति भावः।।८७।।

भाषा – बीती हुई बात का शोक न करें तथा भविष्य की भी कोई चिन्ता न करें। विद्वान पुरुष यथोपस्थित समय के अनुसार व्यवहार करते हैं।८७।।

'तत्सखे सर्वदा त्वया सोत्साहेन स्वज्ञानं क्रियायां परिणमयता कर्तव्यपराणयेनैव भक्तिव्यम्।' यतः–

भाषा– इसलिये हे मित्र! आप सदा उत्साहपूर्वक अपने ज्ञान को कार्य में परिणत करते हुए कर्तव्यपरायण होवें। क्योंकि–

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः यस्तु क्रियावान्पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां न नाममात्रेण करोत्यरोगम्।।८८।।

प्रसंगः– विदुषः लक्षणं प्रस्तौति–

अन्वयः– = (जनाः) शास्त्राणि अधीत्य अपि मूर्खाः भवन्ति, यः पुरूषः क्रियावान् सः विद्वान्, सुचिन्तितम् औषधं नाममात्रेण आतुराणाम् अरोगं न करोति।

व्याख्या– जनाः शास्त्राणि अधीत्य = पठित्वापि मूर्खाः भवन्ति, किन्तु यः पुरूषः क्रियावान् = कर्मकुशलः स एव विद्वान्, तथाहि–सुचिन्तितम् = सुविचारितमपि औषधम् आतुराणां = रोगिणां नाममात्रेण = औषधस्य नामग्रहणेनैव, अरोगं = रोगरहितं न करोति।

भाषा– शास्त्र पढे हुये भी लोग मूर्ख ही रहा करते हैं, किन्तु जो क्रिया कुशल हुआ करते हैं वे ही विद्वान कहे जाते हैं। अच्छी प्रकार सोच समझकर निश्चत की हुई भी रोगियों की औषाधे केवल नाम लेने से ही रोगी को रोगमुक्त नहीं करती।

अन्यच्च–

न स्वल्पमप्यध्यवसायभीरोः, करोति विज्ञानविधिर्गुणं हि।
अन्धस्य किं हस्ततलस्थितोऽपि, प्रकाशयत्यर्थमिह प्रदीपः।।८९।।

प्रसंगः– व्यवसायपरिणतस्यैव ज्ञानस्य साफल्यं निर्दिशति–

अन्वयः– विज्ञानविधिः अध्यवसायभीरोः स्वल्पमपि गुणं न करोति। हि इह हस्तततलस्थितः अपि प्रदीपः अन्धस्य अर्थं प्रकाशयति किम्?।।८९।।

व्याख्या– विज्ञानविधिः = शास्त्रीयज्ञानप्रकारः अध्यवसायभीरोः =

व्यवसायमीतस्य जनस्य स्वल्पमपि, गुणं = उपकारं न करोति। हि = तथाहि इह अन्धस्य हस्ततलस्थितः अपि प्रदीपः अर्थं = पदार्थजातं प्रकाशयति किम्?।।८६।।

भाषा– और भी– परिश्रम करने से डरनेवाले मनुष्य का शास्त्रीय ज्ञान कुछ भी उपकार नहीं कर सकता। जैसे –अन्धे के हाथमें रखा हुआ प्रदीप उसे वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं करा सकता।।८६।।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।६०।।

प्रसंगः– ज्ञानकर्मणोरुभयोः महत्वं प्रतिपादयति–

अन्वयः– यः विद्याम् अविद्याम् (कर्म) उभयम् सह वेद। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते।।६०।।

व्याख्या– यः = यः कश्चिज्जनः, विद्याम् = ज्ञानम् अविद्याम् = कर्म, उभयं = विद्याविद्ये, सह = सार्धं, वेद = जानाति (स हि जनः) अविद्यया = कर्मणा, मृत्युं = सांसारिकफलं, तीर्त्वा = सम्पाद्य, विद्यया = ज्ञानेन अमृतम् = मोक्षम् अश्नुते = प्राप्नोति।

भाषा– जो ज्ञान और कर्म दोनों को साथ ही जानता है, वह व्यक्ति कर्म द्वारा सांसारिक फल प्राप्त कर, ज्ञान द्वारा मोक्ष (अमरत्व) को प्राप्त कर लेता है।।६०।।

तदत्र 'सखे! दशाविशेषे शान्तिः करणीया। एतदप्यतिकष्टं त्वया न मन्तव्यम्।' यतः–

भाषा– इसलिए 'हे मित्र! इस समय अपनी इस दशाको समय विशेष का परिणाम समझकर मन में शान्ति रखनी चाहिए। इसको भी अति दुःखद तुम्हें नहीं समझना चाहिये।' क्योकि–

सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा।
चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।।६१।।

प्रसंग :– मानवेन सुखदुःखोभयसहेन भाव्यमिति उपदिशति–

अन्वयः– आपतितं सुखं तथा आपतितं दुःखं सेव्यम्, सुखानि च दुःखानि च चक्रवत् परिवर्तन्ते।।६१।।

व्याख्या – आपतितं = आगतं सुखं यथा सेव्यं भवति तथैव आपतितं दुःखमपि सेव्यं भवति। यतः सुखानि दुःखानि च चक्रवत् = रथचक्रमिव, परिवर्तन्ते

= परिभ्रमन्ति अर्थात् आयान्ति यन्ति चेति भावः।।६१।।
भाषा– आया हुआ सुख जिस तरह भोगा जाता है उसी तरह आये हुऐ दुःख को भी भोगना चाहिये, क्योंकि सुख और दुःख रथ के पहिये की तरह घूमा करते हैं।।६१।।

अपरं च–स्वग्रामभूमिं परित्यज्य स्वाभाविकमालस्यं विहायोद्योगमाश्रितवता भवतायुक्तमनुष्ठितम्। यतोहि–

भाषा– और अपनी जन्मभूमि एवं स्वाभाविक आलस्य को त्याग कर उद्योग का आश्रय करनेवाले आपने उचित ही किया, क्योंकि–

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति।।६२।।

प्रसंगः– उद्यमस्य प्रशंसा प्रस्तौति–

अन्वयः– हि आलस्यं मनुष्याणां शरीरस्थः महान् रिपुः। उद्यमसमः बन्धुः नास्ति यं कृत्वा (मनुष्यः) न अवसीदति।।६२।।

व्याख्या– आलस्यं = सामर्थ्ये सत्यति कर्तव्यकरणानुत्साहः, मनुष्याणां शरीरे तिष्ठतीति शरीरस्थः महान् = प्रबलः रिपुः = शत्रुः। उद्यमसमः=उद्योगतुल्यः बन्धुः = बान्धवः नास्ति = अंन्यः कश्चन न वर्तते, यं = यमुद्यमं कृत्वां मनुष्यः, न अवसीदति = कर्तव्यमार्गात् परिभ्रष्टो न भवति।।६२।।

भाषा– आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला महान शत्रु है। तथा उद्योग के समान कोई दूसरा सहायक नहीं है। मनुष्य उद्योग करने के कारण ही पथभ्रष्ट नहीं होता।।६२।।

किंच– उत्साहसम्पननदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः।।६३।।

प्रसंग :– लक्ष्म्यारधिकारिणो गुणान् वर्णयति–

अन्वयः– उत्साहसम्पन्नम् अदीर्घसूत्रं, क्रियाविधिज्ञं, व्यसनेषु असक्तं, शूरं, कृतज्ञं दृढ़सौहृदञ्च जनम् लक्ष्मीः निवासहेतोः स्वयम् याति।।६३।।

व्याख्या– उत्साहसंम्पन्नं = उत्साहपूर्णं, अदीर्घसूत्रं = क्षिप्रकार्यकर्तारं, क्रियाविधिं जानातीति तथाभूतस्तं क्रियाविधिज्ञं, व्यसनेषु = दुर्व्यक्तं = असंलग्नं, शूरं, कृतज्ञं, दृढसौहृदं = स्थिरानुरागम् एवं भूतं जनम् लक्ष्मीः निवासहेतेः स्वयं याति = स्वयं गच्छति।

भाषा– और भी उत्साही, जल्दी काम करने वाला, कार्य करने के प्रकार को जाननेवाला, दुर्व्यसनरहित, शूर, कृतज्ञ और जिसकी मित्रता दृढ़ रहती है, ऐसे मनुष्य के पास रहने के लिए लक्ष्मी स्वयं ही चली आती है।

"मित्र! बहुज्ञे त्वयि किं स्वपाण्डित्यप्रकर्षप्रदर्शनेन, मयैव सहात्र स्थित्वा कालो नीयताम्।" यतः–

भाषा – 'मित्र! आप स्वयं विद्वान् हैं फिर मैं आपको क्या सिखा सकता हूँ। इसलिये मेरे साथ यहीं रहकर समय बितायें, क्योंकि–

आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तत्क्षणभङ्गुराः।
परित्यागश्च निःसंगा भवन्ति हि महात्मनाम्।।६४।।

प्रसंगः– महात्मनां गुणान् वर्णयति–

अन्वयः– हि महात्मनां प्रणयाः आमरणान्ताः, कोपाः तत्क्षणभङ्गुरा. परित्यागाश्च निःसंगाः भवन्ति ।।६४।।

व्याख्या– हि, महात्मनां प्रणयाः = सौहार्दानि, आमरणान्ताः = मरणपर्यन्तं, कोपाः = क्रोधादयः तत्क्षणभंगुराः = क्षणमात्रविनाशिनः, परित्यागाः = दानानि, च निःसंगाः = स्वार्थरहिताः भवन्ति।।६४।।

भाषा – महात्माओं का प्रेम मरणपर्यन्त, क्रोध क्षणिक और परित्याग दान स्वार्थरहित हुआ करते हैं।।६४।।

इति श्रुत्वा लघुपतनको ब्रूते–'धन्योऽसि मित्र मन्थर। सर्वथा श्लाघ्यगुणोऽसि इत्यादि प्रियसत्यवचनैर्मन्थरं प्रशंसयामास। उक्तं च–

भाषा – ऐसा सुनकर लघुपतनक बोला – 'हे मन्थर। तुम धन्य हो। सर्वथा तुम्हारे गुण प्रशंसनीय हैं। इस प्रकार प्रिय और सत्यवचनों द्वारा मन्थर की प्रशंसा की। और कहा भी है कि–

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।६५।।

प्रसंगः– सत्यभाषणप्रकारमुपदिशति।

अन्वयः– सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, अप्रियं सत्यं न ब्रूयात्, अनृतं प्रियं च न ब्रूयात्, एषः सनातनः धर्मः।।६५।।

व्याख्या– सत्यं = यथार्थं ब्रूयात् = कथयेत् (तदपि) प्रियं = मनःप्रसादकरं ब्रूयात्, अप्रियं = मनस्त्रासकरं सत्यं न ब्रूयात् अनृतं = असत्यं प्रियम्

(अपि) न ब्रूयात्। एषः = अयं सनातनः = सदाभवः धर्मः = सनातनधर्मः। महाप्रलययानन्तमपि बीजरूपेण वर्तमानो वर्तत इत्यर्थः।।६५।।

भाषा– सत्य बोलें और प्रिय बोलें, अप्रिय सत्य न बोलें, प्रिय भी झूठ न बोलें यही सनातन धर्म है।६५।।

तदेवं ते स्वेच्छाहारविहारं कुर्वाणाः सन्तुष्टाः सुखं निसन्ति स्म। अथ कदाचिच्चित्रांगनामा मृगः केनापि त्रासितस्तत्रागत्य मिलितः। ततः पश्चादायान्तं मृगमवलोक्य भयं संचिन्त्य मन्थरो जलं प्रविष्टः, मूषिकः च विवरं गतः, काकोऽप्युड्डीय वृक्षामारूढ़। ततो लघुपतनकेन सुदूरं निरूप्य 'भयहेतुर्न कोऽप्यायातीत्यालोचितम्। पश्चात्तद्वचनादागत्य पुनः सर्वे मिलित्वा तत्रैवोपविष्टाः। मन्थरेणोक्तम्– 'भद्र मृग। स्वागतं ते, स्वेच्छयोदकाद्याहारोऽनुभूयताम्, आत्रावस्थानेन च वनमिदं सनाथीक्रियताम्।' चित्रांगो ब्रूते–'लुब्धकत्रासितोऽहं भवतां शरणमागतो भवद्भिः सह सख्यमिच्छामि।' हिरण्यकोऽवदत्– मित्रत्वं तावदस्माभिः सह भवता प्रयत्नेन विनैव लब्धम्। यतः–

भाषा– इस प्रकार वे मन्थर आदि अपनी इच्छानुसार आहार विहार करते हुये प्रसन्न चित हो उस वनमें सुखपूर्वक रहने लगे। इसके बाद एक दिन चित्रांग नामक मृग किसी से भयभीत हो वहां आया। भाग कर आते हुये मृग को देखकर भय की कल्पना करके मन्थर जल में घुस गया। चूहा बिलमें चला गया कौवा भी उड़कर पेड़ पर जा बैठा। उसके बाद लघुपतनक ने बहुत दूर तक देखकर 'भय का तो कारण नहीं मालूम पड़ता' ऐसा विचार किया इसके अनन्तर उसके कहने से फिर सब मिलकर वहीं बैठे। मन्थर ने कहा – 'भाई मृग। तुम्हारा स्वागत है, इच्छानुसार जलपान और भोजन आदि करें तथा यहां रहकर इस वन को सनाथ करें। चित्रांग ने कहा–बहेलिये के डर से आपके शरण आया हुआ मैं आपलोगों के साथ मित्रता करना चाहता हूँ। हिरण्यक ने कहा–'हमलोगों के साथ मैत्री तो आपने बिना प्रयत्न से ही प्राप्त कर जह। क्योंकि–

औरसं कृसम्बन्धं तथा वंशक्रमागतम्।
रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्।।६६।।

प्रसंगः– चतुर्विधमित्रतायाः भेदान् निरूपयति–

अन्वयः– औरसं, कृतसम्बन्धं तथा वंशाक्रमागतं व्यसनेभ्यश्च रक्षितम् इति, चतुर्विधं मित्रं प्राहुः।।६६।।

व्याख्या– औरसं = एकयोन्युत्पन्नं, कृतसम्बन्धं = जातविवाहादिसम्बन्धं पुत्रश्वशुरादिकं, वंशक्रमागतं = वंशपरम्पराप्राप्तं, व्यसनेभ्यः = विपद्भ्यः रक्षितम्, इति चतुर्विधं मित्रं प्राहुः।।६६।।

भाषा – सगे भाई आदि, विवाहादि सम्बन्धवाले, वर और कन्या पक्ष के सम्बन्धी, वांपरम्परा से जो मित्र चले आते हों और विपत्ति से जिसकी रक्षा की गई हो ऐसे ये चार प्रकार के मित्र कहे गये हैं।।६६।।

तदत्र भवता स्वगृहनिर्विशेषं स्थीयताम्। तत् श्रुत्वा मृगः सानन्दो भूत्वा स्वेच्छाहारं कृत्वा पानीयं पीत्वा जलासन्नतरुच्छायायामुपविष्टः। अथ मन्थरेणोक्तम्– 'सखे मृग।' एतस्मिन्निर्जने वने केन त्रासितोऽसि? कदाचित् किं व्याधाः संचरन्ति?' मृगेणोक्तम्–

भाषा – इसलिए आप यहां अपने घर की तरह रहें। ऐसा सुनकर मृग आनन्दपूर्वक अपनी इच्छानुसार आहार करके पानी पीकर जल के निकट वृक्ष की छाया में बैठा। इसके बाद मन्थर ने कहा मित्र 'मृग। इस निर्जन वन में किसी से भयभीत हुये हो? क्या व्याघ्र घूमा करते हैं? मृग ने कहा –

अस्ति कलिंगदेशे रूक्मांगदो नाम नरपतिः स च दिग्वजयव्यापारक्रमेणागत्य चन्द्रभागानदीतीरे समवासितकटको वर्तते। प्रातश्च तेनात्रागत्य कर्पूरसरः समीपे भवितव्यम् इति व्याधानां मुखात्किंवदन्ती श्रूयते। तदत्रापि प्रातरवस्थानं भयहेतुकमित्या –लोच्य यथावसरं कार्यमारभ्यताम्। कूर्मःसभयमाह –'जलाशयान्तर गच्छामि।'काकमृगावप्युक्तवन्तौ–'एवमस्तु।' ततो हिरण्यको विहस्याह–'जलाशयान्तरे प्राप्ते तु मन्थरस्य कुशलम्। किन्तु स्थले गच्छतः कः प्रतीकारः।' अतोऽत्र कोऽप्युपायश्चिन्त्यताम्। यथा चोक्तम्–

भाषा – कलिंग देश में रूक्मांगद नामक राजा है। वह दिग्विजय के सिलसिले में आकर चन्द्रभागा नदी के तट पर सेना सहित रह रहा है। प्रातः काल वह यहां कर्पूरसरोवर के समीप आयेगा। इस तरह की बात व्याधों के मुंह से सुनी जाती है इसलिये यहां भी प्रातःकाल रहना भय का ही कारण है ऐसा समझकर "जैसा उचित हो करें"। यह सुनकर कछुआ डरकर बोला– मैं तो जलाशय के भीतर जाता हूँ। कौवा और मृग ने भी कहा 'मित्र! ऐसा ही हो'। तब हिरण्यक हंसकर बोला –'जलाशय पहुंचने पर तो मन्थर का कुशल है पर स्थल मार्ग से जाते हुये इसकी रक्षा कैसे होगी? इसलिये इस सम्बन्ध में कोई उपाय सोचना

चाहिये। क्योंकि–

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः।
श्रृगालेन हतो हस्ती गच्छता पंक्ङवर्त्मना।।६७।।

प्रसंगः– कठिनकार्यस्यायि उपायशक्यतामुदाहरति–

अन्वयः– उपायेन हि यत् शक्यं तत् पराक्रमैः न शक्यम्, श्रृगालेन पंकवर्त्मना गच्छता (सता) हस्ती हतः।।६७।।

व्याख्या – यत् कार्यं उपायेन, शक्यं, तत् पराक्रमैः न शक्यम् पंकवर्त्मना = कर्दममागेण गच्छता सता श्रृगालेन हस्ती हतः = मारितः।।६७।।

भाषा – जो कार्य उपायों द्वारा हो सकता है। वह कार्य शक्ति द्वारा नहीं हो सकता। जैसे–सियार ने कीचड़ के मार्ग से चलते हुये एक हाथी को मार डाला।।६७।।

तावाहतुः –'कथमेतत्।' हिरण्यकः कथयति–

भाषा – वे दोनों बोले–'कैसे। तब हिरण्यक कहता है–

हस्ति धूर्तश्रृगाल कथा

तद्यथा आसीद् ब्रह्मारण्ये कर्पूरतिलको नाम हस्ती। तमवलोक्य सर्वे श्रृगालाश्चिन्त यन्ति स्म–'यद्यथं केनाप्युपायेन म्रियते तदास्माकमेतद्देहेन मासचतुष्टयस्य भोजनं भविष्यति। तत्रैकेन वृद्धश्रृगालेन प्रतिज्ञातम्–'मया बुद्धिप्रभावादस्य मरणं साधयितव्यम्।' अनन्तरं स वंचकः कर्पूरतिलकसमीपं गत्वा साष्टांगपातं प्रणम्योवाच–'देव, दृष्टिप्रसादं कुरु।' हस्ती ब्रूते– 'कस्त्वम्? कुतः समायातः? सोऽवदत्– 'जम्बुकोऽहम्।' सवैर्वनावासिभिः मिलित्वा भवत्सकाशम् प्रस्थापितः। यद्विना राज्ञावस्थातुं न युक्तम् तदत्राटविराज्येऽभिषेक्तुं भवान्सर्वस्वामिगुणोपेतो निरूपितः। यतः–

हाथी और धूर्त सियार की कथा

भाषा– वह इस तरह है–ब्रह्मारण्य में कर्परतिलक नामक एक हस्ती था। उसको देखकर सब सियार सोचने लगे कि–यदि यह किसी उपाय से मर जाये तो हम लोगों को चार महीने तक अपने भोजन की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। यह सुनकर एक वृद्ध सियार ने प्रतिज्ञा की–कि मैं अपने बुद्धि के प्रभाव से इसको मारूंगा। इसके बाद वह धूर्त सियार कर्पूरतिलक के पास जाकर

साष्टांग प्रणाम करके बोला–'महाराज् मेरी ओर कृपा करें। हाथी ने कहा–'कौन हो? और कहा से आये हो? उसने कहा–'मैं सियार हूँ। जंगली सब पशुओं ने मिलकर मुझे आप के पास भेजा है। कि बिना राजा के रहना ठीक नहीं है। अतएव इस जंगली राज्य का राजा वनने के लिये सम्पूर्ण राजगुणों से युक्त आप को.ही सभी ने चुना हैं। क्योंकि –

> यः कुलाभिजनाचारैरतिशुद्धः प्रतापवान्।
> धार्मिको नीतिकुशलः स स्वामी युज्यते भुवि।।६८।।

प्रसंग :– राजलक्षणानि निर्दिशति।

अन्वयः– (यः) जनः कुलेन = वंशेन अभिजनेन = जन्मस्थानेन आचारेण च अतिशुद्धः, प्रतापवान्, धार्मिकः, नीतिकुशलश्च भवति, स एव भुवि, स्वामी = राजा युज्यते।।६८।।

भाषा – जो वंश, ख्याति और आचार से अतिशुद्ध हो, प्रतापी हो, धार्मिक हो, और नीति कुशल हो, वहीं राजा होने के योग्य हुआ करता है।।६८।।

अन्यच्च–

> अराजके हि सर्वस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।
> रक्षार्थमस्य लोकस्य राजानमसृजत्प्रभुः।।६६।।

प्रसंग :– लोके राजोत्पत्तिप्रयोजनं निगदति–

अन्वयः– हि सर्वस्मिन् अराजके, भयात् सर्वतः विद्रुते, अस्य लोकस्य रक्षार्थं प्रभुः राजनम् असृजत्।।६६।।

व्याख्या – हि अराजके = राजरहिते, सर्वस्मिन्=सकले लोके, सर्वतः = समन्ततः भयात् = भियः विद्रुते = इतस्ततः, प्रपलायिते, अस्य,लोकस्य रक्षार्थं = रक्षायै, प्रभुः = जगन्नियन्ता जगदीश्वरः, राजन = लोकनियामकतया, राजसर्जनप्रथाम् असृजत् = व्यरचयत्।।६६।।

भाषा– राजा शून्य समस्त लोक के भय से इधर उधर भाग जाने पर इसकी रक्षा के लिए जगदीश्वर ने 'राजा' बनाने की प्रथा चालू की।।६६।।

किंच–

> इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरूणस्य च।
> चन्द्रवित्तेशयोश्चापि तेजोवृत्तं नृपश्चरेत्।।१००।।

प्रसंग :– देवतेजः सम्भृतो राजा भवतीति प्रस्तौति–

अन्वयः– नृपः इन्द्रानिलयमार्काणाम् अग्नेः वरुणस्य चन्द्रवित्तेशयोः च अपि तेजोवृत्तं चरेत्।

व्याख्या– नृपः = राजा, इन्द्रानिलयमार्काणाम् = इन्द्र वायु–यम–

सूर्याणाम् अग्ने: = वह्ने: 'चन्द्रवित्तेशयो: = चन्द्रमस: कुबेरस्य, वरुणस्य चापि तेजोवृत्तं = शत्रुकृताधिक्षेपापमानादौ: च, प्राणात्ययेप्यसहनरूपं तेज: तस्य वृत्तं च = कृत्यं च समाचरेत्।।१००।।

भाषा– राजा को इन्द्र–वायु–यम–सूर्य चन्द्र और कुबेर तथा वरुण के तेज तथा वृत्त का आचरण करना चाहिये।।१००।।

अपरं च–राजधर्मं भवानेव विशेषेण जानाति। इत्यपि सर्वैरुक्तम्। तथाहि–

भाषा – और यह भी कि –राजधर्म आप ही विशेषरूप से जानते हैं यह भी सब ने कहा। जैसे–

आत्मानं प्रथमं राजा विनयेनोपपादयेत्।
ततः पुत्रांस्ततोऽमात्यांस्ततो भृत्यांस्ततः प्रजाः।।१०१।।

प्रसंग :– राजकर्तव्यं निर्दिशति–

अन्वयः– राजा प्रथमम् आत्मनं, ततः पुत्रान्, ततः अमात्यान्, ततः भृत्यान्, ततः प्रजाः विनयेन उपपादयेत्।।१०१।।

व्याख्या – राजा = नृपतिः प्रथमं = प्राक् आत्मानं, ततः = तदनन्तरं, पुत्रान् = सुतान् ततः अमात्यान् = सचिवान् ततः = तदन्तरं भृत्यान् = सेवकान् ततः प्रजाः विनयेन = अनौद्धत्येन, उपपादयेत् = प्रतिबोधयेत्।।१०१।।

भाषा – राजा को सर्वप्रथम अपने आपको विनीत प्रतिपादित करना चाहिये। उसके बाद पुत्र, अमात्य, भृत्य और प्रजा को यथाक्रम उत्तरोतर विनीत करते रहना चाहिये।

यतोहि– **राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।**
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः।।१०२।।

प्रसंग :– प्रजासु राजप्रभावं प्रस्तौति–

अन्वयः– राज्ञि धर्मिणि (प्रजाः) धर्मिष्ठाः, पापे पापाः, समे समाः (इति प्रजाः) राजानम् 'एव' अनुवर्तन्ते, यथा राजा तथा प्रजाः।। १०२।।

व्याख्या– राज्ञि = नृपतौ, धर्मिणि = धर्मशीले सति प्रजा 'अपि' धर्मिष्ठाः = धर्मपरायणाः, समे = समभावे सति समाः = समानभावा, नाऽपि पापिष्ठा नापि धर्मिष्ठा इत्यर्थः। इति प्रजाः राजानमेव अनुवर्तन्ते, 'यथा राजा तथा प्रजा'।।१०२।।

भाषा – राजा यदि धार्मिक रहे तो प्रजा भी धार्मिक होती है यदि राजा पापी हो तो प्रजाः भी वैसी ही हुआ करती है, यदि राजा न पापी रहा न धार्मिक रहा तो प्रजा भी उसी के समान हुआ करती है, तात्पर्य यह है कि प्रजा राजा

का अनुवर्तन करती है इसलिये कहा है कि 'यथा राजा तथा प्रजा'।

किं बहुना राजधर्मपरिष्कारे हि सर्वधर्मपरिष्कृतिराम्नायते। यथोक्तं केनचित्—

भाषा— अधिक क्या कहा जाय— यदि राजधर्म ठीक रहे तो सभी धर्मों का ठीक रहना कहा जाता है। जैसा किसी ने कहा है कि—

यथा राजन् हस्तिपदे पदानि संल्लीयन्ते सर्वसत्वोद्भवानि।
एवं धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान् सर्वावस्थासु प्रलीनान् निबोध।।१०३।।

प्रसंगः— राजधर्मस्य महत्वमुदीरयति—

अन्वयः— राजन्! यथा हस्तिपदे सर्वसत्वोद्भवानि पदानि संल्लीयन्ते एवं राजधर्मेषु सर्वान् धर्मान् सर्वावस्थासु प्रलीनान् निबोध।।१०३।।

व्याख्या— हे राजन् यथा = येन प्रकारेण, हस्तिपदे = हस्तिचरणे, सर्वे च ते सात्वाः सर्वसत्वाः तेभ्यः उद्भवो येषा तानि, सर्वसत्वोभद्वानि = समस्तप्राणिसमुद्भूतानि पदानि = चरणानि संल्लीयन्ते = सल्लीनानि भवन्ति, 'सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्ना' इति प्रामाण्याददिति भावः। एवं = एवं प्रकारेण, राजध र्मेषुं = राजसम्बद्धधर्मेषु सर्वान् धर्मान् राजधर्मेतरान् निखिलान् धर्मान् सर्वावस्थासु = यासु कासुचन परिस्थितिषु प्रलीनान् = विलीनान् निबोध = जानीहि।।१०३।

भाषा— हे राजन्! जिस तरह हाथी के पैर के नीचे सभी प्राणी के पैर विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार राजधर्म में सभी धर्म विलीन हो जाते हैं ऐसा जानिये।

किं च राजधर्मविप्लवे हि सर्वधर्मविप्लवः प्रजायते। तथाहि—

जैसे किभाषा— क्योंकि राजधर्म के नष्ट हो जाने पर सभी धर्म नष्ट हो जाते ह

नियतिविषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगा—
ज्जगति परवशेऽस्मिन्दुर्लभः साधुवृत्तः।।
कृशमपि विकलं वा व्याधितं वाधनं वा।
पतिमपि कुलनारी धर्मभीत्याऽभ्युपैति।।१०४।

प्रसंग :— धर्मदण्डावेव संसारव्यवहारप्रवर्तकाविति ब्रूते—

अन्वयः— परवशे अस्मिन् जगति प्रायशः दण्डयोगात् नियतिविषयवर्ती (भवति)। साधुवृतः दुर्लभः (भवति) कुलनारी धर्मभीत्या कृशमपि विकलं वा अधनम् वा पतिम् अभ्युपैति।।१०४।।

व्याख्या – परवशे = पराधीने अस्मिन् जगति, जनः प्रायशः = प्रायेण दण्डयोगात् = दण्डसम्बन्धात् राजदण्डजातिदण्डभयात्यिर्थः, नियतविषयवर्ती = शास्त्रनिर्दिष्टमार्गानुसारी भवतीति शेषः। यतः साधुवृतः = प्रकृत्या सच्चरितः दुर्लभो भवति। कुलनारी = कुलीनांगना धर्मभीत्या एव कृशमपि = शरीरेण दुर्बलमपि, विकलं = केनापि अंगेन हीनम् वा, व्याधितं = रोगग्रस्तम्, अधनं = दरिद्रं वा, पतिम् अभ्युपैति = उपगच्छति, आमरणं सेवते।। १०४।।

भाषा – इस पराधीनं ससार में लोग प्रायः दण्ड के भय से ही अपने अपने धर्म का अचारण करते हैं। स्वभावतः सदाचारी मनुष्य का मिलना इस लोक में दुर्लभ है। इसलिए सुन्दर कुलीन स्त्री धर्म के भय से भाग्य के द्वारा जैसा पति मिल गया फिर चाहे दुर्बल, हो, बधिर हो, रोगी हो या गरीब हो जैसा भी हो आमरण उसी की सेवा किया करती है।।१०४।।

'तद्यथा लग्नवेला न विचलति तथा सत्वरमागम्यतां देवेन।' इत्युक्त्वोत्थाय चलितः। ततोऽसौ राज्यलोभाकृष्टः कर्पूरतिलकः श्रृगालवर्त्मना धावन्महापंके निमग्नः। ततस्तेन हस्तिनोक्तम्–'सखे श्रृगाल। किमधुना विधेयम् निपतितोऽहं म्रिये, परावर्त्य पश्य।' श्रृगालेन विहस्योक्तम् –'देव! मम पुच्छकावलम्बनं कृत्वोत्तिष्ठ। यन्मद्विधस्य वचसि त्वया प्रत्ययः कृतस्तदनुभूयतामशरणं दुःखम्। ततो महापंके निमग्नो हस्ती यथेच्छं श्रृगालैर्भक्षितः। अतोऽहं ब्रवीमि– 'उपायेन हि यच्छक्यमित्यादि। तथापि तद्धितवचनमवधीर्य महता भयेन विमुग्ध इव तं जलाशयमृत्सृज्य मन्थरश्चलितः। तेऽपि हिरण्यकादयः स्नेहादनिष्टं शंकमाना मन्थरमनुगच्छन्ति स्म। ततः स्थले गच्छन् केनापि व्याधेन काननं पर्यटता मन्थरः प्राप्तः प्राप्य च तं गृहीत्वोत्थाप्य धनुषि बद्धवा भ्रमन्, क्लेशात् क्षुत्पिपासाकुलः स्वगृहाभिमुखं चलितः।

भाषा :– 'इसलिये राज्याभिषेक का मुहूर्त जिस तरह सम्पन्न हो, टले नहीं वैसी जल्दी करें। ऐसा कहकर उठा और चल पड़ा। इसके बाद राज्यलोभ के वशीभूत होकर वह कर्पूरतिलक भी सियार के पीछे पीछे दौड़ता हुया एक बड़े कीचड़ के दलदल में फंस गया। तब उस हाथी ने कहा –'मित्र सियार अब क्या करना चाहिये। कीचड़ मे गिरा हुआ मैं मर रहा हूँ, घूमकर पीछे की ओर तो देखो।' सियार ने हंसकर कहा कि–महाराज मेरी पूंछ के अग्रभाग को पकड़ कर आप जल्दी निकल आयें। मेरे जैसे की बात पर आप ने विश्वास किया इसलिये उस दुःख का अब अनुभव करे जिससे बचानेवाला भी कोई नहीं मिल सकता। इसके बाद गहरे कीचड़ में फंसे हुये हाथी को सभी सियारों ने इच्छानुसार खाया। इसलिये मैं कहता

हूँ कि –' जो उपाय से शक्य है'– इत्यादि। फिर भी उनके हितवचनों का अनादर कर भयंकर भय से विमूढ़ की तरह मन्थर उस जलाशय को छोड़कर चल पड़ा। वे हिरण्यक आदि भी मन्थर का अहित न हो जाय इस भय से स्नेहवश उसके पीछे–पीछे चल पड़े। उसके बाद स्थल मार्ग में जाते हुये मन्थर को जंगल में घूमते हुये किसी बहेलिये ने देखा और उसे उठाकर अपने धनुष में बांध कर घुमाता हुआ थकावट, भूख और प्यास से घबड़ाया हुआ अपने घर की ओर चल पड़ा।

उपसंहारः

अथ मृगवायसमूषिकाः परं विषादमुपगच्छन्तस्तमनुजग्मुः। यतो हिरण्यको विलपति–

भाषा– अब मृग, कौआ चूहा ये तीनों अत्यनत खिन्न होकर उस बहेलिये के पीछे–पीछे चल पड़े। उसके बाद हिरण्यक इस प्रकार विलाप करने लगा–

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।।१०५।।

प्रसंगः– अनर्थमकस्मादापततीति निर्दिशति–

अन्वयः– अहं अर्णवस्य पारमिव यावत् एकस्य दुःखस्य अन्तं न गच्छामि, तावत् मे द्वितीयं समुपस्थितम्, छिद्रेषु अनर्थाः बहुलीभवन्ति।।१०५।।

व्याख्या– अहं अर्णवस्य = समुद्रस्य पारम् इव, एकस्य दुःखस्य अन्तं = समाप्तिं यावत् न गच्छामि, तावत् द्वितीयं दुःखं, मे = समुपस्थितम् भवति, छिद्रेषु =विपत्समयेषु, अनर्थाः, बहुलीभवन्ति = वर्द्धन्ते। यथा समुद्रस्य पारगमनमसम्भवम् तथैव दुःखस्य समाप्तिरसम्भवैवेति भावः।।१०५।।

भाषा– समुद्र के पार की तरह जब तक एक दुःख का अन्त होने नहीं पाया कि दूसरा बीच में ही उपस्थित हो जाता है। ठीक ही कहा है कि विपत्ति आने पर उसके साथ–साथ अनेकों विपत्तियां आ पड़ती हैं।।१०५।।

अपि च रामचन्द्रोऽप्याह– और भी भगवान रामचन्द्र जी कहते हैं कि–

यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति यच्चेतसाऽपि न धृतंतदिहाभ्युपैति।
प्रातर्भवामि वसुधाधिपचक्रवर्ती सोऽहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी।।१०६।।

प्रसंग :– विपदामाकस्मिकत्वं निरूपयति–

अन्वयः– यत् चिन्तितं तत् इह दूरतरं प्रयाति, यत् पुनः चेतसा अपि न

धृतं तत् इह अभ्युपैति, यः अहं प्रातः वसुधाधिपचक्रवर्ती भवामि, सः अहं जटिलः तपस्वी 'भूत्वा' विपिने ब्रजामि।।१०६।।

व्याख्या – यत् = यत्किमपि चिन्तितं = विचरितं तत्, दूरतरम् = अतिदूरं प्रयाति = गच्छति, यत् पुनः चेतसा = मनसा अपि न धृतं = मनसि स्वप्नेऽपि न आलोचितं, तत् इह अभ्युपैति = हठात् उपस्थितं भवति, यः अहं = दाशरथिः रामः, प्रातः = प्रातःकाले, वसुधाधिपचक्रवर्ती = चक्रवर्ती राजा भवामि, सः (एव) अहं = दाशरथिः रामः, जटिलः = जटाधरः तपस्वी = तपश्चारी च भूत्वा विपिने ब्रजामि = वने गच्छामि।।१०७।।

भाषा– जो सोचा जाता है अन्यन्त दूर हो जाता है, जिसके मन में कल्पना भी नहीं होती वह अकस्मात् सामने उपस्थित हो जाता है। जो मैं प्रातःकाल ही चक्रवर्ती (राजा होने वाला था) वही मैं जटाधारी तपस्वी बनकर अब चौदह वर्ष के लिए जंगल में जा रहा हूँ।।१०६।।

अन्यच्च– अवश्यम्भाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि।
प्रतिकुर्युर्न किं नूनं नलरामयुधिष्ठिराः।।१०७।

प्रसंगः– अवश्यं भाविनो भावा अप्रतीकार्याभवन्ति–

अन्वयः– अवश्यम्भाविभावानां यदि प्रतीकारः भवेत् (तदा) नलरामयुधिष्ठिराः किं नूनं न प्रतिकुर्युः ।।१०७।।

व्याख्या– अवश्यं भविष्यन्तीति अवश्यंभाविनः = च भावाः अवश्यंभाविभावाः तेषाम् अवश्यम्भाविभावानां = अवश्यम्भविष्यतां सुखदुःखादि ध र्माणां यदि = चेत् प्रतीकारः = दूरीकरणोपायः तदा नलरामयुधिष्ठिराः = एतन्नामानो राजानः किं न प्रतिकुर्युः = कथं दूरीकरणं न विदध्युः?।।१०८।।

भाषा– और भी–अवश्य होनेवाले सुखदुःखादि को रोकने का यदि कोई उपाय होता तो नल, राम और युधिष्ठिर जैसे चक्रवर्ती राजा लोग उस उपाय को क्यों न करते?

अपरं च– अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।।१०८।।

प्रसंगः– शुभाशुभकर्मफलस्यावश्यमोक्तव्यतां प्रस्तौति–

अन्वयः– कृतं शुभाशुभं कर्म अवश्यम् एवं भोक्तव्यम् अभुक्तं कर्म कल्पोकोटिशतैः अपि न क्षीयते।।१०८।।

व्याख्या– कृतं = अनुष्ठितं, शुभाशुभं = अशुभं वा कर्म, अवश्यमेव,

भोक्तव्यम् = उपभोक्तव्यम्, अभुक्तं कर्म, कल्पकोटिशतैः = कोटिगुणितैः, अपि कल्पैः न क्षीयते = नाशं नाप्नोति।।१०८।।

भाषा— किया हुआ शुभ अथवा अशुभकर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है। करोड़ कल्प बीत जाने पर भी बिना भोगे कर्म का क्षय नहीं होता है।।१०८।।

तथापि पुंसा सर्वथा पौरुषम् प्रयोक्तव्यमेव। यतोहि—

भाषा — तथापि मनुष्य को पौरूष करना ही चाहिये, क्योंकि—

अस्ति चेदीश्वर कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम्।
कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः।।१०६।।

प्रसंगः— ईश्वरः कर्मकर्तारमेव भजति—

अन्वयः— अन्यकर्मणां फलरूपी कश्चित् ईश्वरः अस्ति चेत् (तदा) सः अपि कर्तारम् एव भजते। हि सः अकर्तुः प्रभुः न।।१०६।

व्याख्या — अन्येषां कर्माणि अन्यकर्माणि तेषाम् अन्यकर्मणाम् = कृतकर्मणामन्येषां जीवानां, फलरूपी = फलदाता कश्चित् = शुभाशुभफलदातृतया कर्मातिरिक्तः कश्चन ईश्वरः चेत् = यदि अस्ति स्वयं कर्मभिरलिप्तः सः = ईश्वरोऽपि कर्तारं = कर्मानुष्ठातारमेव भजते = तत्तत्कर्मानुरूपफलदानेन अनुगृह्णाति। हि = यतः सः अकर्तुः = अकर्मण्यस्य न प्रभुः = पुरुषार्थहीनाय जनाय शुभाशुभफलानि न सृजतीत्यर्थः।।१०६।।

भाषा— प्राणियों को उनके लिए काम का शुभ अथवा अशुभ फल देने वाला कर्मातिरिक्त यदि कोई ईश्वर मान भी लिया जाय तो वह भी फल देने के समय कर्म करने वाले व्यक्ति की ही अपेक्षा रखता है जो कर्म नहीं करता उसको फल नहीं देता इसलिये कर्म करना परमावश्यक है।।१०६।।

इति बहुविलप्य हिरण्यकश्चित्रांगलघुपतनकावाह— 'यावदयं व्याधो वनान्न निःसरति तावन्मन्थरं मोचयितुं यत्नः क्रियताम्।' तावूचतुः—'सत्वरं कार्यमुच्याताम्। हिरण्यको ब्रूते''चित्रांगो जलसमीपं गत्वा मृतमिवात्मानं दर्शयतु। काकश्च तस्योपरि स्थित्वा चंच्वा किमपि विलिखतु। नूनमनेन लुब्धकेन तत्र कच्छपं परित्यज्य मृगमांसार्थिना गन्तव्यम् ततोऽहं मन्थरस्य बन्धनं छेत्स्यामि, सन्निहिते लुब्धके भवद्भ्यां सत्वरं पलायितव्यम्। चित्रांगलघुपतनकाभ्यां शीघ्रम् गत्वा तथाऽनुष्ठते सति स व्याधः श्रान्तः पानीयं पीत्वा तरोरधस्तादुपविष्टस्तथाविधम् मृगमपश्चत्। ततः कर्त्तरिकामादाय प्रहृष्टमना मृगान्तिकश्चलितः। अत्रान्तरे हिरण्यकेन गत्वा मन्थरस्य बन्धनं

छिन्नम्। स कूर्मः सत्वरं जलाशयं प्रविवेश। मृगोऽपि आसन्नं तं व्याधं विलोक्य द्रुतमुत्थाय पलायितः। ततः प्रत्यावृत्य लुब्धको यावत्तरुतलमायाति तावत्मकूर्ममपश्यन्नचिन्तयत् – 'उचितमेवैतन्ममासमीक्ष्यकारिणः।' यतः–

भाषा– ऐसा बारम्बार विलाप कर हिरण्यक ने चित्रांग (मृग) और लघुपतनक (कौवा) को कहा–'जब तक वह बहेलिया इस जंगल के बाहर नहीं जाता तब तक मन्थर को छुड़ाने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। उन दोनों ने कहा– जल्दी कहो, क्या किया जाये।' हिरण्यक बोला–'चित्रांग जल के समीप अपने को मरे हुये की तरह दिखाये। और तुम (कौवे) उसके ऊपर बैठकर चोंच से उसे खोदो। तब यह निश्चय है कि मृग के मांस के लोभ से बहेलिया कछुवा को छोड़कर जल्दी ही उसके पास चला जायेगा। उस समय मैं मन्थर के बन्धन को काट दूंगा और बहेलिया जैसे ही आप लोगों के पास पहुंचे आप लोभ भाग जाना।' चित्रांग और लघुपतनक ने जल्दी जाकर वैसा किया, थका हुआ बहेलिया पानी पीकर पेड़ के नीचे विश्रान्ति के लिए बैठा ही था कि मरे हुये मृग को देखा और प्रसन्न होकर कैंचे लेकर मृग के पास गया। इतने अवसर में हिरण्यक ने आकर मन्थर के बन्धन को काट दिया। वह मन्थर भी जल्दी ही पानी में घुस गया। मृग भी बहेलिये को समीप आया हुया देखकर उठा और जल्दी से भाग गया। लौटकर वह बहेलिया जब पेड के नीचे आता है तो कछुवे को न देखकर सोचता है कि–"बिना समझे काम करने वाले मेरे जैसे के लिये यह उचित ही है।' क्योंकि–

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि।।११०।।

प्रसंगः– निश्चितपरित्यागी शोकमाप्नोतीति निर्दिशति–

अन्वयः– यः ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते, ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि।।११०।।

व्याख्या– यः ध्रुवाणि = निश्चितानि वस्तूनि, परित्यज्य अध्रुवं = अनिश्चितं वस्तु निषेवते = सेवते, तस्य जनस्य ध्रुवाणि = निश्चितानि नश्यन्ति, अध्रुवं = अनिश्चितन्तु नष्टमेव हि। अर्थात् निश्चितं वस्तु परित्यज्य अनिश्चितस्य वस्तुनः सेवनं कथमपि न युक्तमिपि भावः।।११०।।

भाषा– जो मनुष्य निश्चित वस्तु का त्यागकर अनिश्चित वरतु के पीछे

दौड़ता है उसकी निश्चित वस्तु नष्ट हो जाती है और अनिश्चित वस्तु.तो पहले ही नष्ट है।

ततोऽसौ स्वकर्मवशान्निराशः कटकं प्रविष्टः मन्थरादयश्च सर्वे विमुक्तापदः स्वस्वस्थानं गत्वा सर्वसुखोपकरणसमेताः सुखेन स्थितः लोकयात्रायां व्यापृताः।

भाषा– इसके बाद वह अकेला बहेलिया अपने दुर्भाग्य से निराश होकर अपने आवास स्थल पर आया, मन्थर आदि सभी आपत्ति से छूटकर अपने अपने स्थल पर जाकर सुख की सभी सामग्री को प्राप्त कर रहने लगे।

अथ राजपुत्रैः सानन्दमुक्तम्–'सर्वं श्रुतवन्तः सुखिनो वयम्। सम्प्रति सिद्धं नः समीहितम्।'

उक्तं च–यत्पूर्वं ग्रन्थारम्भे 'असाधना वित्तहीनाः इत्यादि साध नादिसर्वोपाय हीनानां जनानां यदि परस्परं दृढ़सौहार्दं स्यात्तर्हि सर्वमपि मनश्चिन्तितं कार्यं सिद्धमेव भवति। इत्येवास्य नीतिसंग्रहस्थ मित्रलाभस्य निष्कर्षः। विष्णुशर्मोवाच–'एतावता भवतामभिलषितं सम्पन्नम्, अपरमपीदमस्तु–

भाषा– तब राजपुत्रों ने सानन्द कहा– हम सब मित्रलाभ सुन चुके और सुखी हुए, हम लोगों का अभीष्ट भी सिद्ध हुआ। ग्रन्थाम्भ में कहा भी है कि–"असाधाना वित्तहीन" इत्यादि साधनादिसभी उपायों से हीन रहते हुये भी यदि मनुष्यों में परस्पर दृढ़ मैत्रीभाव हो तो सभी मन में सोचे हुये कार्य सिद्ध होते हैं। यही इस नीतिसंग्रह के मित्रलाभ का सारतत्व है। विष्णुशर्मा ने कहा–"इतने से आप लोगों का अभीष्ट तो सिद्ध हुआ पर यह और भी होवें।"–

मित्रं प्राप्नुत सज्जनाः जनपदैर्लक्ष्मीः समालम्ब्यतां,
भूपालाः परिपालयन्तु वसुधां शश्वत्स्वधर्मे स्थिताः।
आस्तां मानसतुष्टये सुकृतिनां नीतिर्नवोढेव वः,
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवांश्चन्द्रार्धचूडामणिः।।१११।।

प्रसंगः– ग्रन्थन्ते मग्ङलमाचरति।

अन्वय :– सज्जनाः मित्रं प्राप्नुत, जनपदैः लक्ष्मीः समालम्ब्यताम्, भूपालाः शश्वत् स्वधर्मे स्थिताः वसुधाम् परिपालयन्तु, वः नीतिः नवोढा इव सुकृतीनां मानसतुष्टये आस्ताम्, भगवान् चन्द्रार्धचूडामणिः जनस्य कल्याणं कुरुताम्।

व्याख्या– हे सज्जनाः। मित्रं प्राप्नुत = लभत, जनपदैः = देशैः लक्ष्मीः

समालम्ब्यताम् – ...ाम्, भूपालाः = राजानाः शश्वत् = निरन्तरं स्वधर्मे = राजधर्मे स्थिताः वसुधां = पृथ्वीं परिपालयन्तु, वः नीतिः, नवोढ़ा इव = नवपरिणीता स्त्रीव सुकृतिनां = पुण्यवतां, ...तुष्टये = मनस्तोषाय, आस्ताम् = जायताम् भगवान् चन्द्रार्धचूडामणिः = शंकरः, जनस्य कल्याणं कुरुताम्।।१११।।

भाषा – आप लोगों को सन्मित्र मिलें, देश में लक्ष्मी का वास हो, राजधर्म में स्थित राजा लोग निरन्तर पृथ्वी का पालन करें, नवविवाहिता स्त्री के सदृश राजाओं की नीति विद्वानों के मन को प्रसन्न करें, चन्द्रमौलीश्वर भगवान शंकर सर्वसाधारण का कल्याण करें।

।। पं० गौरीनाथपाठकसम्पादितः मित्रलाभः समाप्तः ।।

सादरम्

अमृतं नामृतमिति प्रोचुस्तत्तत्त्ववेदिनः।
मित्रं यदक्षरद्वन्द्वं तदेवेहामृतं विदुः।।
अत एत...य ल...र्थं यतितव्यं सदा बुधैः।
कृतिः कर्तुः कृ...र्था स्याद्येनेत्यभ्यर्थये मुहुः।।

***